* ओ३म् *

अथार्याभिविनयः

प्राकृतभाषानुवादसहितः

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना

निर्मितः

सर्वलोकहिताय

प्रकाशकः

वैदिक पुस्तकालय

दयानन्दाश्रम, अजमेर

प्रकाशक : **वैदिक पुस्तकालय**
दयानन्दाश्रम, अजमेर (राजस्थान)

स्वत्त्वाधिकार : **श्रीमती परोपकारिणी सभा**
दयानन्द आश्रम, केसरगंज,
अजमेर—३०५ ००१

संस्करण : संवत् २०५४ विक्रमाब्द

मूल्य : २५.०० रुपये

शब्द संयोजक : **भगवती लेज़र प्रिंट्स**
७, कम्यूनिटी, सैंटर, पूर्वी कैलाश,
नई दिल्ली–६५. दूरभाष : ६४७४०६६

मुद्रक : **जैय्यद प्रेस**
बल्लीमारान, दिल्ली–६

ओ३म्

प्रथम संस्करण सम्बन्धी वक्तव्य

कई सज्जन कहते हुए सुने जाते हैं कि आर्यसमाज में शुष्क तर्क बहुत अधिक है, यहाँ भक्ति का अभाव है, इसलिए कई लोग आर्यसमाज को छोड़ कर अन्य मतों में चले गये हैं, क्योंकि असल वस्तु न मिले तो लोगों को नकल से ही काम चलाना पड़ता है। जब आर्यसमाज लोगों को सच्ची वैदिक भक्ति की शिक्षा न दे, तो यह कुछ अंशों में स्वाभाविक हो जाता है कि वे लोग नकली भक्ति से शान्ति प्राप्त करने का यत्न करेंगे चाहे वह शान्ति भी सच्ची शान्ति न होगी।

यह संभव है कि आर्यसमाज में कुछ व्यक्ति ऐसे लि जायँ जिनके जीवन में तर्क प्रधान हो और वे भक्तिशून्य हों। परन्तु यह विचारना कि, आर्यसमाज ने या आर्यसमाज के प्रवर्तक ने भक्ति के अमृत के पिपासुओं को तृप्त करने का प्रबन्ध कुछ नहीं किया, एक भारी भूल होगी, क्योंकि आर्यसमाज के प्रवर्तक ने एक ग्रन्थ लिखा, जिसमें एक सच्चे ईश्वर–भक्त के हृदय के उद्गार ऐसे शब्दों में लिखे गए हैं, जिनका आधार प्यारे प्रभु की वाणी वेद है। भगवद्भक्तों के लिए इससे बढ़ कर आनन्द की बात और क्या हो सकती है? पतितपावन प्रभु की वाणी और उसको सुनानेवाला प्रभुप्रेम में मस्त सच्चा ईश्वर–भक्त! उस संग्रह का नाम है ''आर्याभिविनय''। उन उद्गारों के कुछ नमूने आप श्रीयुत पं० ब्रह्मदत्त जी द्वारा लिखित ''भक्त की भावना'' नाम लेख, जो कि साथ ही छापा जा रहा है, में पढ़ेंगे।

आर्य पुरुषो! इस ग्रन्थ के महत्व को समझो। इसमें ईश्वरभक्ति का प्रवाह ठाठें मार रहा है। आपको झूठे गुरुओं के पीछे भटकने की आवश्यकता नहीं है। इन मन्त्रों को कण्ठाग्र करो, मन लगाकर करा और सच्ची श्रद्धा से करो। फिर देखो, दिन प्रतिदिन आप को जो आनन्द आएगा, ईश्वरभक्ति की जो मस्ती आप अनुभव करेंगे, वह बढ़ती ही चली जाएगी।

यह ग्रन्थ जहाँ ईश्वर भक्ति के भावों से भरा पड़ा है, वहाँ देश–भक्ति के भावों की भी इसमें कमी नहीं है। स्थान–स्थान पर स्वराज्य की और चकवर्ती राज्य की प्रार्थना है। ऋषिवर को जिस ओर से देखें उन का महत्व चरम सीमा को पहुँचा हुआ पाते हैं। ईश्वर भक्ति में वे सबसे बढ़े हुए हैं; संसार भर के देशभक्तों के वे शिरोमणि हैं। उनका वर्णन करते हुए यही मुख से निकलता है—"महर्षे! तू धन्य है।"

देश भक्ति के लेखों के कुछ नमूने "भक्ति मार्ग और कर्मयोग" शीर्षक श्री पं० ब्रह्मदत्त जी के लेख में मिलेंगे।

ग्रन्थ की भाषा—आर्याभिविनय की भाषा के विषय में भी कुछ शब्द कहना अत्यन्त आवश्यक है। आज से ६० वर्ष पूर्व वह भाषा नहीं थी, जो आज है, इसलिए यह आशा नहीं की जा सकती कि आर्याभिविनय की भाषा ठीक वैसी ही हो जैसी आजकल बोली या लिखी जाती है। यह बात भी सब पाठक जानते ही हैं, कि महर्षि दयानन्द सरस्वती गुजरात प्रान्त के रहनेवाले थे, इसलिए उनकी जन्मस्थान की भाषा गुजराती थी। वे प्रचार कार्य करते हुए भी वर्षों ही संस्कृत बोलते रहे, संस्कृत में **व्याख्यान** देते रहे, और संस्कृत में ही शास्त्रार्थ आदि करते रहे, इसए ऋषिवर का आर्यभाषा

लिखने वा बोलने का अधिक अभ्यास नहीं था। यह ग्रन्थ १९३२ संवत् के प्रारम्भ में लिखा गया था, उस समय ऋषि आर्यभाषा और भी कम जानते थे। इसलिए इस ग्रन्थ की भाषा कहीं-कहीं कुछ भिन्न सी है, जैसे—

(१) ''ईश्वर भक्ति रहित मनुष्य का बल और राज्य ऐश्वर्यादि कभी मत बढ़ो।''

''आओ अपने सब मिल के.......ईश्वर को प्रसन्न करें।'' पृष्ठ २४॥

(२) आओ, भाई लगो! ईश्वर की भक्ति करें। पृष्ठ ४७॥

(३) जिससे हमारा वर्तमान श्रेष्ठ ही हो। पृष्ठ ६८॥

ये हैं नमूने ऋषि की भाषा के।

महात्मा गाँधी भी गुजरात प्रान्त के निवासी हैं। यदि उनकी भाषा (विशेषत: अब से कुछ वर्ष पूर्व की भाषा) की ऋषि की भाषा से तुलना की जाय तो यह निश्चय हो जायगा कि ऋषि की भाषा का ऐसा होना स्वाभाविक था।

यह सब कुछ देखते हुए यह मानना पड़ेगा कि ऋषि दयानन्द सरस्वती राष्ट्र-भाषा के प्रथमोद्धारक थे। उन्होंने अपने जन्मस्थान की भाषा गुजराती होने पर और पठनपाठन की भाषा संस्कृत होने पर भी अपने सब ग्रन्थ आर्यभाषा में लिखे।

संभव है कई भाई कि आर्याभिविनय की भाषा का संशोधन कर देना चाहिये। हमारा उन भाइयों से निवेदन है कि ऐसा करना ठीक नहीं होगा, क्योंकि भाषा के परिवर्तन करने पर प्रार्थना की स्वाभाविकता नष्ट हो जायगी। इस समय

प्रार्थना एक ईश्वरीय-प्रेरणा से प्रेरित भक्त के हृदय से निकली हुई है। भाषा के परिवर्तन करने पर प्रार्थना में कृत्रिमता आ जायगी।

इस संस्करण की विशेषता—ऋषि ने आर्याभिविनय का प्रथम संस्करण १९३२ संवत् में प्रकाशित किया था। दूसरा संस्करण माघ सं० १९४० में निकला—अर्थात् ऋषिनिर्वाण के कोई तीन मास पीछे। इस संस्करण को इन दोनों संस्करणों के साथ मिला (Collate) कर तैय्यार किया गया है। आजकल के अजमेरीय संस्करणों में अनेक स्थलों पर पाठों की छपने आदि के कारण गड़बड़ थी। उन सब पाठों को ठीक कर दिया है। जैसे पृष्ठ ३६,३७ पर इस संस्करण में ८ पंक्तियाँ ऐसी मिलेंगी जो कि आजकल के अजमेरीय संस्करणों में नहीं मिलतीं। यह पंक्तियां ब्रैकिट में देकर नीचे टिप्पणी दे दी गई है। इसी तरह से पृष्ठ ५३ पर लगभग ५ पंक्तियां ऐसी मिलेंगी जो आज कल के अजमेरीय संस्करणों में नहीं मिलतीं। पाठों का संशोधन करते समय जहाँ कुछ भी अधिक परिवर्तन है वहाँ टिप्पणी दे दी गई है। इस संस्करण में एक शब्द भी सम्पादक ने अपनी ओर से नहीं घटाया-बढ़ाया। यह सारा संस्करण या तो आज-कल के अजमेरीय संस्करण के अनुकूल है, और या जहाँ भेद है वहाँ प्रथम और द्वितीय संस्करण के अनुकूल है।

इस संस्करण में अनेक स्थलों पर ग्रन्थ की भाषा को समझाने के लिए टिप्पणियाँ दी गई हैं।

कई स्थलों पर टिप्पणियों द्वारा विषय को स्पष्ट किया गया है। कुछ स्थल ऐसे हैं; जिन पर विधर्मी लोग आक्षेप

करते रहे हैं। उन आक्षेपों का उत्तर भी टिप्पणी में दिया गया है। यह भी ध्यान रहे कि इस ग्रन्थ में कुछ टिप्पणियाँ महर्षि की अपनी भी हैं दोनों टिप्पणियों का भेद दर्शान के लिए हमने उन पर कोष्ठ में (महर्षि) पद का निर्देश कर दिया है। महर्षि के टिप्पणी रूप पाठ प्रथम संस्करण में मूल ग्रन्थ के अन्तर्गत थे।

प्रत्येक मन्त्र नए पृष्ठ से आरम्भ किया गया है।

इस संस्करण में बढ़िया कागज लगवाया गया है और छपाई दो रंगों में कराई गई। पुस्तक कितनी सुन्दर छपी है, यह पाठक स्वयं देख सकते हैं। इतनी विशेषता होते हुए भी यह ग्रन्थ इतने सस्ते दामों में जो कि लागत से भी कम है, जनता की भेंट किया जा रहा है। यह केवल इसीलिए कि इस पावन ग्रन्थ का प्रचार बढ़े और ईश्वर-भक्ति का स्रोत बहे।

इस सब का श्रेय रामलाल कपूर ट्रस्ट के अधिकारियों को है जो आर्ष ग्रन्थों के प्रचार के लिए इतना श्रम कर रहे हैं। मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ कि उन्होंने मुझे अवसर दिया है कि मैं भी ऋषिऋण के कुछ भाग से उर्ऋण होकर कल्याण का भागी बन सकूँ।

सच्चे ब्राह्मण, उच्च कोटि के तपस्वी और त्यागी श्री पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु ने इस संस्करण के तय्यार करने में बहुत सहायता दी है। आपने काशी में बैठे हुए "भक्त की भावना" और "भक्ति और कर्मयोग" लेख लिख कर भेजे। आपने टिप्पणी लिखने में सहायता दी, और आपने इस ग्रन्थ के प्रकाशन के लिए बहुमूल्य सम्मति समय समय पर दी।

मैं आप का अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।

श्रीयुत देवेन्द्रकुमार जी बी. ए. (आनर्ज) ने इस ग्रन्थ के प्रूफ़ संशोधन आदि में मुझे सहायता दी है, उनका मैं कृतज्ञ तो हूँ परन्तु उनका धन्यवाद नहीं करूँगा, क्योंकि वैदिक धर्म की सेवा के जो काम भी हम करें वे हमारे दोनों के साझे हैं।

मैं डी० ए० बी० कालिज रिसर्च लायब्रेरी के अध्यक्ष श्री पं० भगवद्दत्त जी और श्रीयुत हंसराज जी लायब्रेरियन का धन्यवाद करता हूँ कि उन्होंने मुझे आर्याभिनिय का प्रथम संस्करण कई मास के लिए दिए रखा। श्रीयुत मामराज जी ने अपने संग्रह में से द्वितीय संस्करण मुझे देकर अत्यन्त कृतज्ञ किया है।

इन शब्दों के साथ यह सुन्दर संस्करण भगवद्भक्तों की सेवा में भेंट करता हूँ।

निवेदक—

वाचस्पति-सम्पादक

अष्टम संस्करण

यह हमारा अष्टम संस्करण है। इससे पहले सप्तम संस्करण ५ सहस्र की संख्या में सन् १९४७ के अगस्त मास में छपा छपाया बिना सिला (फार्मों के रूप में) भारत विभाजन में ट्रस्ट के अन्य सब स्टाक के साथ प्रेस में ही पड़ा रह गया। जब ट्रस्ट का प्रेस ही रह गया तो उसमें का सब कुछ रहना स्वाभाविक ही था। इस प्रकार सप्तम संस्करण की एक भी प्रति हमारे पास नहीं रही।

अपने प्रेस के पूर्वोक्त रीति से नष्ट हो जाने के कारण तथा दो तीन वर्ष तक किसी भी सुनिश्चित स्थान में आश्रय न मिलने के कारण चाहते हुए भी हम कार्य आरम्भ न कर सके। अन्त में जैसे तैसे आश्रय बनाकर काशी में ही ट्रस्ट के ग्रन्थों के प्रकाशन की व्यवस्था करनी पड़ी। अपना प्रेस न होने की कठिनाइयों का सामना करते हुए हमने जब प्रकाशन का कार्य आरम्भ किया तब कागज की कठिनाई बाधारूप में उपस्थित हुई। आर्याभिविनय जिस आकार के कागज पर छपती रही उस आकार का कागज कहीं से भी किसी प्रकार नहीं मिल सका। अत एव हमने ग्रन्थ की माँग अधिक आने पर पहले आकार का विचार छोड़कर २०।३० सोलह पेजी आकार पर ही छापना उचित समझा, जिससे प्रचार कार्य अवरुद्ध न हो। हमें कागज की यहाँ तक कठिनाई हुई कि हमें कागज कभी देहली से कभी कानपुर से कभी मालगाड़ी से तो कभी सवारीगाड़ी से भी मँगवाना पड़ा। सब प्रकार की कठिनाइयाँ होने पर भी हम जैसे तैसे प्रकाशन

की व्यवस्था कर रहे हैं। इस समय कागज का मूल्य तथा मुद्रणादि का व्यय पूर्वापेक्षया बहुत बढ़ गये हैं, इस कारण हमें इस संस्करण का मूल्य पूर्वापेक्षया कुछ अधिक रखना पड़ा। पाठक महानुभाव हमारी इन कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए हमें मूल्यवर्धन के लिये क्षमा करेंगे।

प्रथम संस्करण के लिये श्री पं० वाचस्पति जी एम०ए० तथा चतुर्थ संस्करण के लिये स्वर्गीय श्री पं० व्यासदेव जी एम०ए० का हम धन्यवाद करते हैं। द्वितीय संस्करण से लेकर सप्तम संस्करण तक सामान्यतया और इस अष्टम संस्करण के लिये विशेषतया श्री पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक का धन्यवाद करते हैं। यह अष्टम संस्करण उनके विशेष परिश्रम का फल है।

हंसराज कपूर
मन्त्री—रामलाल कपूर ट्रस्ट

ओ३म्

असतो मा सद् गमय!
तमसो मा ज्योतिर्गमय!!
मृत्योर्माऽमृतं गमयेति!!!

असत् से सत् की ओर ले चलो!
हे प्रभो अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चलो!!
मृत्यु से अमृत की ओर ले चलो!!!

भक्त की भावना

धर्म, आचार और भक्ति इन शब्दों का दुरुपयोग संसार में जितना हो रहा है, उतना शायद ही किसी शब्द का हुआ होगा। धर्म आचार और भक्ति के ही नाम पर इतने बड़े-बड़े अत्याचार संसार में हुए हैं कि उनकी गणना नहीं हो सकती। संसार की प्रायः सभी जातियाँ तथा देशों के इतिहास इनसे भरे पड़े हैं। निष्पक्ष उदार भाव से विचारने पर बुद्धिमान् मनुष्य को यही निश्चय हो रहा है, कि धर्म, आचार और भक्ति के वास्तविक स्वरूप को न समझ कर ही ये अनर्थ भूमण्डल में हो रहे हैं।

धर्म (धरति लोकं, धार्यते येन जगत्) नाम उन नियमों (Principal laws of nature) का है। जिसके आधार, आश्रय पर यह संसार चल रहा है। आचार उस व्यवहार का नाम है जिसको करने से मनुष्यों का परस्पर कभी कुछ भी

झगड़ा नहीं हो सकता। दूसरों के साथ वही बर्ताव करो जैसा कि तुम चाहते हो कि दूसरे तुम्हारे साथ करें। ''आत्मवत् सर्वभूतेषु'' ''Do with others as you wish to be done by others.'' ''हर चे बर ख़ुद मपसन्दी बर दीगरां मपसन्द''। यह है धर्म और आचार का विशुद्ध स्वरूप। क्या कोई कह सकता है कि इस धर्म और आचार की विश्व में कभी किसी भी अवस्था में आवश्यकता नहीं? यह धर्म और आचार तो मानव–समाज से तीन काल में लुप्त नहीं हो सकता। एक जैसा आवश्यक–नहीं २ अन्तर्हृदय की सच्ची भावना से अपनाने योग्य है और रहेगा।

भक्ति भी अन्तरात्मा की हृदय के अन्तःपटल में वर्तमान रहने वाली उन गहरी भावनाओँ तथा उद्गारों का नाम है जो विना किसी विडम्बना के सम्पूर्ण विश्व के नियन्ता प्रभु की सत्ता का स्वयं अनुभव करते हुए उत्पन्न होती है। जिन भावनाओँ का बाह्य जगत्–लोकाचार से कुछ भी सम्बन्ध नहीं होता। पिता, पुत्र—अथवा शिशु और माता की वह किलोलें हैं जो बिना किसी शब्द का उच्चारण किए स्नेह से परिपूर्ण अवस्था में होती हैं।

इसके विपरीत लोक–समाज के विचार से लोकैषणाकी दृष्टि से किसी विशेष समुदाय को अपने पीछे चलाने के लिए ध्यान के नाम पर की हुई हमारी अनेक क्रियायें ''भक्ति'' की परिभाषा में नहीं आ सकतीं।

इन मिथ्या भक्तियों से पृथक् करने के विचार से ही परम तपस्वी, परम ईश्वर–भक्त, महायोगी, जितेन्द्रिय, निष्पक्षपात, महात्मा ऋषि दयानन्द सरस्वती ने भक्तिमार्ग के इस ग्रन्थ की वेद मन्त्रों के आधार पर रचना की, अपनी कल्पनामात्र

के आधार पर नहीं।

संसार में प्रायः यही देखा जाता है कि यम नियमों का पालन किये विना ही हम लोग 'भक्त' बनना चाहते हैं। ऐसे मार्ग पर चलाने वाले "कनफुकवे" गुरुओं की ही आजकल दाल गलती है। यम–नियमों वाली (जैसे इस ग्रन्थ की) सीधे सादे शब्दों की भक्ति को तो सूखी भक्ति के नाम से पुकारा जाता है। यह भ्रम कहीं–कहीं आर्य कहलाने वालों में भी देखा जाता है। वे कोई भड़कीली चमाचम भक्ति चाहते हैं। सो ये तो प्रकृति के गुण हैं। दोनों आत्मा और परमात्मा तो इससे पृथक् हैं। हाँ जीव अज्ञानवश उसमें फँस जाता है, तभी उसको यत्न भी करना पड़ता है।

पवित्र वेदवाणी में सूक्तों के सूक्त ऐसी भक्ति से परिपूर्ण हैं, जिनमें वही स्वाभाविक (ठ्ठड्ढ्ढ्ढद्ध)—भावों का ही संचार है, बनावटी बातों का उनमें लेश भी नहीं। यह इस ग्रन्थ के एक–एक मन्त्र का ध्यान पूर्वक पाठ करने से ज्ञात हो सकता है।

अन्तर्हृदय की उपर्युक्त भावनाओं के कुछ अंश इस ग्रन्थ में से सहृदय पाठकों के सम्मुख उपस्थित किये जाते हैं—

"आपका तो स्वभाव ही है कि अंगीकृत को कभी नहीं छोड़ते। सो आप सदैव हम को सुख देंगे, यह हम लोगों को दृढ़ निश्चय है" पृष्ठ ८॥

"हम सब लोग आपकी प्राप्ति की अत्यन्त इच्छा करते हैं। सो आप सब शीघ्र हमको प्राप्त होओ। जो प्राप्त होने में आप थोड़ा भी विलम्ब करेंगे तो हमारा कुछ भी कभी ठिकाना न ललेगा"। पृष्ठ ९३॥

"हे मनुष्यो! उसको मत भूलो, विना उसके कोई सुख

का ठिकाना नहीं है''। पृष्ठ ९६॥

''किञ्च हम लोग तो आपके प्रसन्न करने में कुछ भी समर्थ नहीं हैं, सर्वथा आपके अनुकूल वर्तमान नहीं कर सकते, परन्तु आप तो अधमोद्धारक हैं, इससे हमको स्वकृपाकटाक्ष से सुखी करें'' पृष्ठ ९६॥

''जैसे पुत्र लोग अपने पिता के घर में आनन्दपूर्वक निवास करते हैं वैसे ही जो परमात्मा के भक्त हैं वे सदा सुखी रहते हैं.........'' पृष्ठ ४०॥

यह है हृदयंगम—सच्ची भावना से परिपूर्ण पूर्णश्रद्धायुक्त भक्त की भावना जो एक साक्षात्कृतधर्मा परम ईश्वरभक्त के उद्‌गार हैं, जिनके एक-एक शब्द पर घण्टों विचार करने पर भी अधिक से अधिक आनन्द प्रतीत होता है। जिस दिन—जिस घड़ी हम इस मार्ग पर चलने का दृढ़ निश्चय कर चुकेंगे और हमें मार्ग की अनुकूल सामग्री की उत्कट खोज होगी तभी इन भोले भाले (सरल) शब्दों का महत्त्व हमें समझ में आवेगा।

आत्मरोग की औषध के इस महाभण्डार में न जाने कब कौनसी औषध उपयुक्त सिद्ध हो (कारगर साबित हो)।

यह तो निश्चय ही है—

''स हि दीर्घकालनैरन्तर्यसत्काराऽऽसेवितो दृढभूमिः''।

—योग० १।१४॥

इस भक्ति मार्ग का निरन्तर उपासक ही अपने निर्दिष्ट लक्ष्य तक पहुँच सकता है। प्रभु कृपा करें हम इस पथ के अनुगामी बने!!!

विनीत—**ब्रह्मदत्त जिज्ञासुः**

भक्ति मार्ग और कर्म योग

वर्तमान समय में कर्मण्यता और भक्ति ये दोनों परस्पर विरुद्ध कहे जाते हैं। वैदिक भक्तिवाद इसके सर्वथा विपरीत है। वह तो **'ईशावास्यम्' 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि'** संसार में कर्मशील बनो, और कोई मार्ग नहीं, यही पुनः पुनः पुकार कर कह रहा है। कर्म मार्ग के प्रतिपादक अन्य भी ग्रन्थ हैं, परन्तु जितना निस्सन्देह, विना किसी लाग लपेट के कर्मण्यता का प्रतिपादन वेद करता है उतना कोई दूसरा ग्रन्थ नहीं करता, यह बात इस ग्रन्थ को देखने से स्पष्ट विदित हो जाती है—

(१) पाहि नो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्तेरराव्णः। पाहि रीषत उत वा जिघांसतो बृहद्भानो यविष्ठ्य॥ १।३।१०।५॥

हे सर्वशत्रुदाहकाग्ने परमेश्वर! राक्षस हिंसाशील दुष्टस्वभाव देहधारियों से हमारी पालना करो।....जो हमको मारने लगे तथा जो मारने की इच्छा करता है, हे महातेज बलवत्तम! उन सबसे हमारी रक्षा करो। पृष्ठ १६॥

(२) हे महाराजाधिराज परब्रह्मन्! 'क्षत्राय' अखण्ड चक्रवर्ती राज्य के लिये शौर्य, धैर्य, नीति विनय पराक्रम और बलादि उत्तम गुणयुक्त कृपा से हम लोगों को यथावत् पुष्ट कर। अन्य देशवासी राजा हमारे देश में कभी न हों तथा हम लोग पराधीन कभी न हों। पृष्ठ ८१॥

(३) "अन्यान्य प्रीति से परम वीर्य पराक्रम से निष्कण्टक चक्रवर्ती राज्य भोगें। हममें सब नीतिमान् सज्जन पुरुष हों।" पृष्ठ ५१॥

(४) ''वीरों के चक्रवर्ती राज्य को प्राप्त हों।'' पृष्ठ २९॥

(५) ''हे कृपासिन्धो भगवन्!..........हमारा स्वराज्य अत्यन्त बढ़े।'' पृष्ठ २२॥

(६) ''...साम्राज्याधिकारी सद्यः कीजिये'' पृष्ठ २१॥

सच्चे ईश्वर-भक्त की भावना में कर्मण्यता कहाँ तक है, तथा ऐसी कर्मण्यतापूर्ण भक्ति कहाँ तक ग्राह्य है, यह सहृदय पाठक स्वयं समझ सकते हैं।

आर्य्य और निष्कर्मण्य ये दोनों परस्पर विरोधी हैं। वैदिक कर्मवाद का सच्चा स्वरूप यही है॥

निवेदक—**ब्रह्मदत्त जिज्ञासुः**

प्रकाशकीय-वक्तव्य

रामलाल कपूर ट्रस्ट ग्रन्थ माला का तृतीय पुष्प आर्य जनता की सेवा में भेंट किया जाता है। इसका सम्पादन जिस योग्यता तथा सुन्दरता से हुआ है उसका श्रेय श्री पं० वाचस्पति जी रू. क्रस्. विद्यावाचस्पति को है। परोपकार के भाव से प्रेरित होकर, महर्षि दयानन्द जी के हृदयोद्‌गारों को भटकती हुई जनता तक पहुँचाने के लिये, जिस अनथक परिश्रम से श्री पण्डित जी ने अपना अमूल्य समय देकर यह संस्करण निकाला है इसके लिये हम उनका हार्दिक धन्यवाद करते हैं॥

इस गुटके पर हमारा कुल व्यय केवल कागज़ छपवाई तथा जिल्द पर लगभग ११५०) हुआ है परन्तु इसका मूल्य २५ प्रतियों से कम के ख़रीदार के लिये–) रखा गया है, जिसमें से कि, अधिक प्रतियों के ख़रीदार को जो रियायत दी जाती है उसका सब हिसाब लगा कर इस ट्रस्ट की ओर से इस शुभ र्य में लगभग ४५०) की आहुति दी जा रही है।

परमात्मा करे संसार में प्रभुभक्ति की पुनीत–पावनी गंगा पुनः प्रवाहित हो, सांसारिक झंझटों से सन्तप्त मानवहृदय उस प्राणप्यारे प्रभु की भक्ति में लीन हो कर सच्ची शान्ति तथा वास्तविक आनन्द का आस्वादन करें। इसी में हम अपने तुच्छ प्रयत्न की सफलता समझते हैं॥

निवेदक—**ब्रह्मदत्त जिज्ञासुः**

ओ३म्

अथार्य्याऽभिविनयोपक्रमणिका-विचारः

सर्वात्मा सच्चिदानन्दोऽनन्तो यो न्यायकृच्छुचिः।
भूयात्तमां सहायो नो दयालुः सर्वशक्तिमान्॥ १॥
चक्षूरामांकचन्द्रेऽब्दे चैत्रे मासि सिते दले।
दशम्यां गुरुवारेऽयं ग्रन्थारम्भः कृतो मया॥ २॥
दयायां आनन्दो विलसति परः स्वात्मविदितः,
सरस्वत्यस्याग्रे निवसति मुदा सत्यनिलया।
इयं ख्यातिर्यस्य प्रलसितगुणा वेदशरणा—
स्त्यनेनायं ग्रन्थो रचित इति बोधव्यमनघाः॥ ३॥
बहुभिः प्रार्थितः सम्यग् ग्रन्थारम्भः कृतोऽधुना।
हिताय सर्वलोकानां ज्ञानाय परमात्मनः॥ ४॥
वेदस्य मूलमन्त्राणां व्याख्यानं लोकभाषया।
क्रियते सुखबोधाय ब्रह्मज्ञानाय सम्प्रति॥ ५॥
स्तुत्युपासनयोः सम्यक् प्रार्थनायाश्च वर्णितः।
विषयो वेदमन्त्रैश्च सर्वेषां सुखवर्द्धन॥ ६॥
विमलं सुखदं सततं सुहितं जगति प्रततं तदु वेदगतम्।
मनसि प्रकटं यदि यस्य सुखी स नरोस्ति सदेश्वरभागधिकः॥ ७॥
विशेषभागीह वृणोति यो हितं नरः परात्मानमतीव मानतः।
अशेषदुःखात्तु विमुच्य विद्यया समोक्षमाप्नोति न कामकामुकः॥ ८॥

व्याख्यान—जो परमात्मा, सब का आत्मा, सत् चित् आनन्दस्वरूप, अनन्त, अज, न्याय करने वाला, निर्मल, सदा पवित्र, दयालु, सब सामर्थ्यवाला हमारा इष्ट देव है, वह हम

को सहाय नित्य देवे, जिससे महाकठिन काम भी हम लोग सहज से करने को समर्थ हों। हे कृपानिधे! यह काम हमारा आप ही सिद्ध करने वाले हो, हम आशा करते हैं कि आप हमारी कामना सिद्ध करेंगे॥ १ ॥

संवत् १९३२ मिति चैत्र सुदी १० गुरुवार के दिन इस ग्रन्थ का आरम्भ हमने किया॥ २ ॥

दयानन्द सरस्वती स्वामी का नाम इस (उक्त तीसरे) श्लोक से निकलता है॥ ३ ॥

बहुत सज्जन लोग, सब के हितकारक धर्मात्मा विद्वान् विचारशील जनों ने मुझ से प्रीति से कहा, तब सब लोगों के हित और यथार्थ परमेश्वर का ज्ञान तथा प्रेम भक्ति यथावत् हो, इसलिये इस ग्रन्थ का आरम्भ किया है॥ ४ ॥

इस ग्रन्थ में केवल चार वेदों के और ब्राह्मण ग्रन्थों के मूल मन्त्रों का प्राकृत भाषा में **व्याख्यान** किया है, जिससे सब लोगों को सुख से बोध हो और ब्रह्म का ज्ञान यथार्थ हो॥ ५ ॥

इस ग्रन्थ में परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना उपासना तथा धर्म्मादि विषय वर्णन किया है परन्तु मूलसंहितामन्त्र और ब्राह्मण प्रमाण से ही, सब को सुख बढ़ाने वाला यह विषय है॥ ६ ॥

जो ब्रह्म विमल सुखकारक, पूर्णकाम, तृप्त, जगत् में व्याप्त, वही सब वेदों से प्राप्य है। जिसके मन में इस ब्रह्म की प्रकटता (यथार्थ विज्ञान) है, वही मनुष्य ईश्वर के आनन्द का भागी है और वही सब से सदैव अधिक सुखी है। ऐसे मनुष्य को धन्य है॥ ७ ॥

जो नर इस संसार में अत्यन्त प्रेम, धर्मात्मा, विद्या, सत्संग, सुविचारता, निर्वैरता, जितेन्द्रियता, प्रत्यक्षादि प्रमाणों से परमात्मा का स्वीकार (आश्रय) करता है, वही जन अतीव भाग्यशाली है, क्योंकि वह मनुष्य यथार्थ सत्य विद्या से सम्पूर्ण दुःख से छूट के परमानन्द परमात्मा का नित्य संग रूप जो मोक्ष उसको प्राप्त होता है, फिर कभी जन्म मरण आदि दुःख सागर को प्राप्त नहीं होता, परन्तु जो विषयलम्पट, विचाररहित, विद्या-धर्म-जितेन्द्रियता-सत्संग-रहित, छल-कपट-अभिमान-दुराग्राहादिदुष्टतायुक्त है, सो वह मोक्ष सुख को प्राप्त नहीं होता, क्योंकि वह ईश्वरभक्ति से विमुख है और वह मनुष्य जन्म, मरण ज्वरादि पीड़ाओँ से पीड़ित होके सदा दुःखसागर में ही पड़ा रहता है॥८॥

इससे सब मनुष्यों को उचित है कि परमेश्वर और उसकी आज्ञा से विरुद्ध कभी नहीं हों, किन्तु ईश्वर तथा उसकी आज्ञा में तत्पर हो के इस लोक (संसार व्यवहार) और परलोक (जो पूर्वोक्त मोक्ष) इनकी सिद्धि यथावत् करें, यही सब मनुष्यों की कृतकृत्यता है।

इस आर्याभिविनय ग्रन्थ में मुख्यता से वेदमन्त्रों का परमेश्वर सम्बन्धी एक ही अर्थ संक्षेप से किया है। दोनों अर्थ करने से ग्रन्थ बढ़ जाता। इससे व्यवहार-विद्यासम्बन्धी अर्थ नहीं किया गया, परन्तु वेदों के भाष्य में यथावत् विस्तारपूर्वक परमार्थ और व्यवहारार्थ ये दोनों अर्थ सप्रमाण किये जायेंगे। जैसे—"**तदेवाऽग्निस्तदादित्यस्तद्वायुः**" इत्यादि, य० संहिता प्र०। "**इन्द्रं मित्रं वरुणम्**" इत्यादि ऋ० सं० प्र०। "**बृहस्पतिर्वै ब्रह्म**", "**गणपतिर्वै ब्रह्म**", "**प्राणो वै ब्रह्म**", "**आपो वै ब्रह्म**", "**ब्रह्म ह्यग्निः**" इत्यादि, शतपथ

ऐतरेय ब्राह्मणादि प्र० और "**महान्तमेवात्मानम्**" इत्यादि निरुक्तादि प्रमाणों से परब्रह्म ही अर्थ लिया जाता है। तथा "**मुखादग्निरजायत**" इत्यादि, य० सं० प्र०। "**वायोरग्निः**" इत्यादि, ब्राह्मण प्र०। तथा "**अग्निरग्रणीर्भवतीति**" इत्यादि निरुक्त प्रमाणों से यह प्रत्यक्ष जो रूप गुण वाला दाह प्रकाशयुक्त भौतिक अग्नि, वह लिया जाता है। इत्यादि दृढ़ प्रमाण, युक्ति और प्रत्यक्ष व्यवहार से दोनों अर्थ वेदभाष्य में लिखे जायेंगे, जिससे सायणादिकृत भाष्य-दोष और उनके अनुसार अंग्रेजी कृतार्थदोष रूप वेदों के कलंक निवृत्त हो जायेंगे और वेदों के सत्यार्थ का प्रकाश होने से वेदों का महत्त्व तथा वेदों का अनन्तार्थ जानने से मनुष्यों को महालाभ और वेदों में यथावत् सबकी प्रीति होगी।

इस ग्रन्थ से तो केवल मनुष्यों को ईश्वर का स्वरूपज्ञान और भक्ति, धर्मनिष्ठा, व्यवहारशुद्धि इत्यादि प्रयोजन सिद्ध होंगे, जिससे नास्तिक और पाखण्डमतादि अधर्म में मनुष्य लोग न फँसें। किञ्च सब प्रकार के मनुष्य अत्युत्तम हों और सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर की कृपा सब मनुष्यों पर हो, जिससे सब मनुष्य दुष्टता को छोड़ के श्रेष्ठता को स्वीकार करें। यह मेरी परमात्मा से प्रार्थना है, सो परमेश्वर अवश्य पूरी करेगा॥

॥ इत्युपक्रमणिका संक्षेपतः सम्पूर्णा॥

ओ३म्

तत्सत्परब्रह्मणे नमः

अथार्याभिविनयप्रारम्भः

ओं शं नो॑ मि॒त्रः शं वरु॑णः॒ शं नो॑ भवत्वर्य॒मा।
शं न॒ इन्द्रो॒ बृह॒स्पति॒ः शं नो॒ विष्णु॑रुरुक्र॒मः॥ १॥

—ऋ० अ० १। अ० ६। व० १८। मं० ४*॥

व्याख्यान—हे सच्चिदानन्दानन्तस्वरूप, हे नित्यशुद्धबुद्ध-मुक्तस्वभाव, हे अद्वितीयानुपम जगदादिकारण, हे अज, निराकार, सर्वशक्तिमन्, न्यायकारिन्, हे जगदीश, सर्वजगदुत्पा-दकाधार, हे सनातन, सर्वमंगलमय, सर्वस्वामिन्, हे करुणाकरा-स्मत्पितः, परमसहायक, हे सर्वानन्दप्रद, सकलदुःखविनाशक, हे अविद्यान्धकारनिर्मूलक, विद्यार्कप्रकाशक, हे परमैश्वर्यदायक, साम्राज्यप्रसारक, हे अधमोद्धारक, पतितपावन, मान्यप्रद, हे विश्वविनोदक, विनयविधिप्रद, विश्वासविलासक, हे निरञ्जन, नायक, शर्मद, नरेश, निर्विकार, हे सर्वान्तर्यामिन्, सदुपदेशक, मोक्षप्रद, हे सत्यगुणाकर, निर्मल, निरीह, निरामय, निरुपद्रव, दीनदयाकर, परमसुखदायक, हे दारिद्र्यविनाशक, निर्वैर-विधायक, सुनीतिवर्धक, हे प्रीतिसाधक, राज्यविधायक, शत्रुविनाशक, हे सर्वबलदायक, निर्बलपालक, धर्मसुप्रापक, हे अर्थसुसाधक, सुकामवर्द्धक, ज्ञानप्रद, हे सन्ततिपालक,

---

* यह संख्या इस भाग में सर्वत्र यथावत् जान लेना, क्योंकि आगे केवल अंकसंख्या लिखी जायगी। १।६।१८।४॥ इनसे अष्टक, अध्याय, वर्ग, मन्त्र जान लेना। (महर्षि)

धर्मसुशिक्षक, रोगविनाशक, हे पुरुषार्थप्रापक, दुर्गुणनाशक, सिद्धिप्रद, हे सज्जनसुखद, दुष्टसुताड़न, गर्वकुक्रोधकुलोभ-विदारक, हे परमेश, परेश, परमात्मन्, परब्रह्मन्, हे जगदानन्दक परमेश्वर, व्यापक, सूक्ष्माच्छेद्य, हे अजरामृताभयनिर्बन्धानादे! हे अप्रतिमप्रभाव, निर्गुणातुल, विश्वाद्य, विश्ववन्द्य, विद्वद्विलासक, इत्याद्यनन्तविशेषणवाच्य, हे मंगलप्रदेश्वर! आप सर्वथा सब के निश्चित मित्र हो। हमको सत्यसुखदायक सर्वदा हो। हे सर्वोत्कृष्ट, स्वीकरणीय, वरेश्वर! आप वरुण अर्थात् सबसे परमोत्तम हो, आप हमको परमसुखदायक हो। हे पक्षपातरहित, धर्मन्यायकारिन्! आप अर्यमा (यमराज) हो, हमारे लिये न्याययुक्त सुख देने वाले आप ही हो। हे परमैश्वर्य्यवन् इन्द्रेश्वर! आप हमको परमैश्वर्ययुक्त शीघ्र स्थिर सुख दीजिये। हे महाविद्य, वाचोऽधिपते, बृहस्पते, परमात्मन्! हम लोगों को (बृहत्) सब से बड़े सुख को देने वाले आप ही हो। हे सर्वव्यापक अनन्त पराक्रमेश्वर विष्णो! आप हमको अनन्त सुख देओ। जो कुछ माँगेंगे सो आप से ही हम लोग माँगेंगे। सब सुखों का देने वाला आप के बिना कोई नहीं है। सर्वथा हम लोगों को आपका ही आश्रय है, अन्य किसी का नहीं, क्योंकि सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयामय, सब से बड़े पिता को छोड़ के नीच का आश्रय हम लोग कभी न करेंगे। आप का तो स्वभाव ही है कि अंगीकृत को कभी नहीं छोड़ते, सो आप सदैव हम को सुख देंगे, यह हम लोगों को दृढ़ निश्चय है॥ १ ॥

स्तुति विषय

अ॒ग्निमी॑ळे पु॒रोहि॑तं य॒ज्ञस्य॑ दे॒वमृ॒त्विज॑म्।
होता॑रं रत्न॒धात॑मम्॥ २॥ १।१।१।१॥

व्याख्यान—वन्द्येश्वराग्ने! आप ज्ञानस्वरूप हो, आप की मैं स्तुति करता हूँ. सब मनुष्यों के प्रति परमात्मा का यह उपदेश है—हे मनुष्यो! तुम लोग इस प्रकार से मेरी स्तुति, प्रार्थना और उपासनादि करो, जैसे पिता वा गुरु अपने पुत्र वा शिष्य को शिक्षा करता है कि, तुम पिता वा गुरु के विषय में इस प्रकार से स्तुति आदि का वर्त्तमान करना, वैसे सब के पिता और परमगुरु ईश्वर ने हम को कृपा से सब व्यवहार और विद्यादि पदार्थों का उपदेश किया है, जिससे हमको व्यवहार-ज्ञान और परमार्थ-ज्ञान होने से अत्यन्त सुख हो। जैसे सब का आदिकारण ईश्वर है, वैसे परमविद्या वेद का भी आदिकरण ईश्वर है।

हे सर्वहितोपकारक! आप "**पुरोहितम्**" सब जगत् के हितसाधक हो। हे यज्ञदेव! सब मनुष्यों के पूज्यतम और ज्ञानयज्ञादि के लिये कमनीयतम हो। "**ऋत्विजम्**" सब ऋतु वसन्त आदि के रचक अर्थात् जिस समय जैसा सुख चाहिये उस समय वैसे सुख के सम्पादक आप ही हो। "**होतारम्**" सब जगत् को समस्त योग और क्षेम के देने वाले हो और प्रलय समय में कारण में सब जगत् का होम करने वाले हो। "**रत्नधातमम्**" रत्न अर्थात् रमणीय पृथिव्यादिकों के धारण रचन करने वाले तथा अपने सेवकों के लिये रत्नों के धारण करने वाले एक आप ही हो। हे सर्वशक्तिमन् परमात्मन्! इसलिये मैं वारंवार आप की स्तुति करता हूँ, इसको आप

स्वीकार कीजिये, जिससे हम लोग आप के कृपापात्र होके सदैव आनन्द में रहें॥ २॥

प्रार्थना विषय

अ॒ग्निना॑ र॒यिम॑श्नव॒त्पोष॑मे॒व दि॒वेदि॑वे।
य॒शसं॑ वी॒रव॑त्तमम्॥ ३॥ १।१।१।३॥

व्याख्यान—हे महादातः ईश्वराग्ने! आपकी कृपा से स्तुति करने वाला मनुष्य "**रयिम्**" उस विद्यादि धन तथा सुवर्णादि धन को अवश्य प्राप्त होता है कि जोधन प्रतिदिन "**पोषमेव**" महापुष्टि करने और सत्कीर्ति को बढ़ाने वाला तथा जिससे विद्या, शौय्य, धैर्य्य, चातुर्थ, बल, पराक्रम और दृढाङ्ग, धर्मात्मा, न्याययुक्त अत्यन्त वीर पुरुष प्राप्त हों, वैसे सुवर्ण रत्नादि तथा चक्रवर्ती राज्य और विज्ञानस्वरूप धन को मैं प्राप्त होऊँ, तथा आपकी कृपा से सदैव धर्मात्मा होके अत्यन्त सुखी रहूँ॥ ३॥

स्तुति विषय

अ॒ग्निः पूर्वे॑भि॒र्ऋषि॑भि॒रीड्यो॒ नूत॑नैरु॒त।
स दे॒वाँ एह व॑क्षति॥ ४॥ १।१।१।२॥

व्याख्यान—हे सब मनुष्यों के स्तुति करने योग्य ईश्वराग्ने! "**पूर्वेभिः**" विद्या पढ़े हुए प्राचीन "**ऋषिभिः**" मन्त्रार्थ देखने वाले विद्वान् तथा "**नूतनै**" वेदार्थ पढ़ने वाले नवीन ब्रह्मचारियों से "**ईड्यः**" स्तुति के योग्य "**उत**" और जो हम लोग (मनुष्य) विद्वान् वा मूर्ख हैं उन से भी अवश्य आप ही स्तुति के योग्य

हो, सो स्तुति को प्राप्त हुए आप हमारे और सब संसार के सुख के लिये दिव्यगुण अर्थात् विद्यादि को कृपा से प्राप्त करो, आप ही सब के इष्टदेव हो॥४॥

स्तुति विषय

अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः।
देवो देवेभिरागमत्॥५॥ १।१।१।५॥

व्याख्यान—हे सर्वदृक्! सब को देखने वाले "क्रतुः" सब जगत् के जनक, "**सत्यः**" अविनाशी अर्थात् कभी जिसका नाश नहीं होता, "**चित्रश्रवस्तमः**" आश्चर्य्यश्रवणादि, आश्चर्यगुण, आश्चर्यशक्ति, आश्चर्यस्वरूप और अत्यन्त उत्तम आप हो, जिन आपके तुल्य वा आप से बड़ा कोई नहीं है। हे जगदीश! "**देवेभिः**" दिव्य गुणों के सह वर्त्तमान हमारे हृदय में आप प्रकट हों, सब जगत् में भी प्रकाशित हों जिससे हम और हमारा राज्य दिव्यगुणयुक्त हो। वह राज्य आप का ही है, हम तो केवल आप के पुत्र तथा भृत्यवत् हैं॥५॥

प्रार्थना विषय

यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि।
तवेत्तत्सत्यमङ्गिरः॥६॥ १।१।२।१॥

व्याख्यान—"**अङ्ग**" मित्र! जो आप को आत्मादि दान करता है उसको "**भद्रम्**" व्यावहारिक और पारमार्थिक सुख अवश्य देते हो। हे "**अङ्गिरः**" प्राणप्रिय! यह आप का

सत्यव्रत है कि स्वभक्तों को परमानन्द देना। यही आप का स्वभाव हम को अत्यन्त सुखकारक है। आप मुझ को ऐहिक और पारमार्थिक इन दोनों सुखों का दान शीघ्र दीजिए, जिस से सब दुःख दूर हों, हम को सदा सुख ही रहे॥६॥

स्तुति विषय

वायवा याहि दर्शतेमे सोमा अरंकृताः।
तेषां पाहि श्रुधी हवम्॥७॥ १।१।३।१॥

व्याख्यान—हे अनन्तबल परेश वायो, दर्शनीय! आप अपनी कृपा से ही हमको प्राप्त हो। हम लोगों ने अपनी अल्पशक्ति से सोम (सोमवल्यादि) ओषधियों का उत्तम रस सम्पादन किया है और जो कुछ भी हमारे श्रेष्ठ पदार्थ हैं वे आपके लिये ही "**अरङ्कृताः**" अलंकृत अर्थात् उत्तम रीति से हमने बनाये हैं, वे सब आपके समर्पण किये गये हैं, उन को आप स्वीकार करो (सर्वात्मा से पान करो)। हम दीनों की पुकार सुनकर जैसे पिता को पुत्र छोटी चीज समर्पण करता है, उस पर पिता अत्यन्त प्रसन्न होता है, वैसे आप हम पर प्रसन्न होओ॥७॥

प्रार्थना विषय

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती।
यज्ञं वष्टु धियावसुः॥८॥ १।१।६।४॥

व्याख्यान—वाक्पते! सर्वविद्यामय! हमको आप की कृपा से "सरस्वती" सर्वशास्त्र विज्ञानयुक्त वाणी प्राप्त हो।

''वाजेभिः'' तथा उत्कृष्ट अन्नादि के साथ वर्तमान ''वाजिनीवती'' सर्वोत्तम क्रिया विज्ञानयुक्त ''पावका'' पवित्र स्वरूप और पवित्र करने वाली सदैव सत्यभाषणमय, मङ्गलकारक वाणी आपकी प्रेरणा से प्राप्त होके आपके अनुग्रह से ''धियावसु'' परमोत्तम बुद्धि के साथ वर्त्तमान निधिस्वरूप यह वाणी ''यज्ञं वष्टु'' सर्वशास्त्रबोध और पूजनीयतम आपके विज्ञान की कामनायुक्त सदैव हो, जिस से हमारी सब मूर्खता नष्ट हो और हम महापाण्डित्ययुक्त हों॥८॥

स्तुति विषय

पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्य्याणाम्।
इन्द्रं सोमे सचा सुते॥९॥ १।१।९।२॥

व्याख्यान—हे परात्पर परमात्मन्! आप ''पुरूतमम्'' अत्यन्तोत्तम और सर्वशत्रुविनाशक हो, तथा बहुविध जगत् के पदार्थों के ''**ईशानम्**'' स्वामी और उत्पादक हो। ''**वार्य्याणाम्**'' वर वरणीय परमानन्द मोक्षादि पदार्थों के भी ईशान हो, और ''**सोमे**'' उत्पत्तिस्थान संसार आप से [''**सुते**''] उत्पन्न होने से [''**सचा**''] प्रीतिपूर्वक ''**इन्द्रम्**'' परमैश्वर्य्यवान् आपको (**अभिप्रगायत***) हृदय में अत्यन्त प्रेम से गावें, यथावत् स्तुति करें, जिससे आपकी कृपा से हम लोगों का भी परमैश्वर्य्य बढ़ता जाय और परमानन्द को प्राप्त हों॥९॥

---

* इस शब्द की अनुवृत्ति मन्त्र १।१।९।१॥ से आई है। (महर्षि)

प्रार्थना विषय

तमीशा॑नं॒ जग॑तस्त॒स्थुष॒स्पतिं॑ धियंजि॒न्वमव॑से हूमहे व॒यम्। पू॒षा नो॒ यथा॒ वेद॑सा॒मस॑द् वृ॒धे र॑क्षि॒ता पा॒युरद॑ब्धः स्व॒स्तये॑॥ १०॥ १।६।१५।५॥

व्याख्यान—हे सर्वाधिस्वामिन्! आप ही चर और अचर जगत् के "**ईशानम्**" रचनेवाले हो। "**धियंजिन्वम्**" सर्वविद्यामय, विज्ञानस्वरूप, बुद्धि को प्रकाशित करनेवाले, सबको तृप्त करनेवाले प्रीणनीयस्वरूप, "**पूषा**" सबके पोषक हो, उन आपका हम "**नः अवसे**" अपनी रक्षा के लिये "**हूमहे**" आह्वान करते हैं। "**यथा**" जिस प्रकार से आप हमारे विद्यादि धनों की वृद्धि वा रक्षा के लिये "**अदब्धः, रक्षिता**" निरालस रक्षा करने में तत्पर हो, वैसे ही कृपा करके आप "**स्वस्तये**" हमारी स्वस्थता के लिये "**पायुः**" निरन्तर रक्षक (विनाशनिवारक) हो, आपसे पालित हम लोग सदैव उत्तम कामों में उन्नति और आनन्द को प्राप्त हों॥ १०॥

स्तुति विषय

अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे।
पृथिव्याः सप्त धामभिः॥ ११॥ १।२।७।१॥

व्याख्यान—हे "**देवाः**" विद्वानो! "**विष्णुः**" सर्वत्र व्यापक परमेश्वर ने सब जीवों को पाप तथा पुण्य का फल भोगने और सब पदार्थों के स्थित होने के लिये, पृथिवी से ले के ["**सप्त**"] सप्तविध "**धामभिः**" धाम अर्थात् ऊँचे

---

* इस शब्द की अनुवृत्ति मन्त्र १।१।९।१॥ से आई है। (महर्षि)

नीचे सात प्रकार के लोकों को बनाया, तथा गायत्र्यादि सात छन्दों से विस्तृत विद्यायुक्त वेद को भी बनाया। उन लोकों के साथ वर्त्तमान व्यापक ईश्वर ने "**यतः**" जिस सामर्थ्य से सब लोकों को रचा है "**अतः**" (सामर्थ्यात्) उसी सामर्थ्य से हम लोगों की रक्षा करें। हे विद्वानो! तुम लोग भी उसी विष्णु के उपदेश से हमारी रक्षा करो। कैसा है यह विष्णु? जिसने इस सब जगत् को "**विचक्रमे**" विविध प्रकार से रचा है, उसकी नित्य भक्ति करो॥ ११॥

प्रार्थना विषय

पाहि नो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्तेररराव्णः। पाहि रीषत उत वा जिघांसतो बृहद्भानो यविष्ठ्य॥ १२॥

१।३।१०।५॥

व्याख्यान—हे सर्वशत्रुदाहकारने परमेश्वर! राक्षस हिंसाशील दुष्टस्वभाव देहधारियों से "**नः**" हमारी "**पाहि**" पालना और रक्षा करो। "**धूर्त्तेररराव्णः**" कृपण जो धूर्त्त उस मनुष्य से भी हमारी रक्षा करो। जो हमको मारने लगे तथा जो मारने की इच्छा करता है, हे महातेज बलवत्तम! उन सबसे हमारी रक्षा करो॥ १२॥

स्तुति विषय

त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः स्वभूत्योजा अवसे धृषन्मनः। चकृषे भूमिं प्रतिमानमोजसोऽपः स्वः परिभूरेष्या दिवम्॥ १३॥ १।४।१४।२॥

व्याख्यान—हे परमैश्वर्य्यवन्! आकाश लोक के पार में तथा भीतर अपने ऐश्वर्य और बल से विराजमान होके दुष्टों के मन को धर्षण तिरस्कार करते हुए सब जगत् तथा विशेष हम लोगों के "**अवसे**" सम्यक् रक्षण के लिए "**त्वम्**" आप सावधान हो रहे हो। इससे हम निर्भय होके आनन्द कर रहे हैं। किञ्च "**दिवम्**" परमाकाश "**भूमिम्**" भूमि तथा "**स्वः**" सुख विशेष मध्यस्थ लोक इन सबों को अपने सामर्थ्य से ही रच के यथावत् धारण कर रहे हो। "**परिभूः एषि**" सबके ऊपर वर्त्तमान और सबको प्राप्त हो रहे हो। "**आ दिवम्**" द्योतनात्मक सूर्यादि लोक, "**अपः**" अन्तरिक्ष लोक और जल इन सब के प्रतिमान (परिमाण) कर्त्ता आप ही हो, तथा आप अपरिमेय हो। कृपा करके हमको अपना तथा सृष्टि का विज्ञान दीजिये॥ १३॥

प्रार्थना विषय

वि जानीह्यार्यान् ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान्। शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वेत्ता ते सधमादेषु चाकन॥ १४॥ १।४।१०।३॥

व्याख्यान—हे यथायोग्य सबको जाननेवाले ईश्वर! आप "**आर्यान्**" विद्याधर्म्मादि उत्कृष्ट स्वभावाचरणयुक्त आर्यों को जानो, "**ये च दस्यवः**" और जो नास्तिक, डाकू, चोर विश्वासघाती, मूर्ख, विषयलम्पट, हिंसादिदोषयुक्त, उत्तम कर्म्म में विघ्न करने वाले स्वार्थी, स्वार्थसाधन में तत्पर, वेदविद्याविरोधी, अनार्य मनुष्य "**बर्हिष्मते**" सर्वोपकारक यज्ञ के ध्वंसक हैं, इन सब दुष्टों को आप "**रन्धय**"—

समूलान् विनाशय—मूलसहित नष्ट कर दीजिये। और "**शासदव्रतान्**" ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासादि धर्म्मानुष्ठान-व्रतरहित वेदमार्गोच्छेदक अनाचारियों को यथायोग्य शासन करो (शीघ्र उन पर दण्ड निपातन करो), जिससे वे भी शिक्षायुक्त हो के शिष्ट हों, अथवा उनका प्राणान्त हो जाय, कि वा हमारे वश में ही रहें। "**शाकी**" तथा जीव को परम शक्तियुक्त शक्ति देने और उत्तम कामों में प्रेरणा करने वाले हो। आप हमारे दुष्ट कामों से निरोधक हो। मैं भी "**सधमादेषु**" उत्कृष्ट स्थानों में निवास करता हुआ "**विश्वेत्ता ते**" तुम्हारी आज्ञानुकूल सब उत्तम कर्म्मों की "**चाकन**" कामना करता हूँ, सो आप पूरी करें॥ १४॥

स्तुति विषय

न यस्य द्यावापृथिवी अनु व्यचो
न सिन्धवो रजसो अन्तमानशुः।
नोत स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यय
एको अन्यच्चकृषे विश्वमानुषक्॥ १५॥
१।४।१४।४॥

व्याख्यान—हे परमैश्वर्य्ययुक्तेश्वर! आप इन्द्र हो। हे मनुष्यो! जिस परमात्मा का अन्त=इतना यह है न हो*, उसकी व्याप्ति का परिच्छेद (इयत्ता) परिमाण कोई नहीं कर सकता। तथा दिव अर्थात् सूर्य्यादिलोक, स्वोपरि आकाश तथा पृथिवी,

* जैसे कोई मद में मग्न हो के रणभूमि में युद्ध करे वैसे मेघ का भी दृष्टान्त जानना। (महर्षि)

मध्य निकृष्ट लोक, ये कोई उसके आदि अन्त को नहीं पाते, क्योंकि "**अनुव्यचः**" यह सब के बीच में अनुस्यूत (परिपूर्ण) हो रहा है। तथा "**न सिन्धवः**" अन्तरिक्ष में जो दिव्य जल तथा सब लोक सो भी अन्त नहीं पा सकते। "**नोत स्ववृष्टि मदे**" वृष्टि प्रहार से युद्ध करता हुआ वृत्र (मेघ), तथा बिजुली गर्जन आदि भी ईश्वर का पार नहीं पा सकते। हे परमात्मन्! आपका पार कौन पा सके। क्योंकि "**एकः**" एक असहाय अपने से भिन्न स्वसामर्थ्य से ही "**विश्वम्**" सब जगत् को "**आनुषक्**" आनुषक्त अथात् उसमें व्याप्त होते और "**चकृषे**" (कृतवान्) आपने ही उत्पन्न किया है, फिर जगत् के पदार्थ आपका पार कैसे पा सकें? तथा "**अन्यत्**" आप जगत् रूप कभी नहीं बनते, न अपने में से जगत् को रचते हो, किन्तु अनन्त अपने सामर्थ्य से ही जगत् का रचन, धारण और लय यथाकाल करते हो, इससे आपका सहाय हम लोगों को सदैव है॥ १५॥

प्रार्थना विषय

ऊर्ध्वो नः पाह्यंहसो नि केतुना विश्वं समत्रिणं दह।
कृधी न ऊर्ध्वाञ्चरथाय जीवसे विदा देवेषु नो दुवः॥ १६॥ १। ३। १०। ४॥

व्याख्यान—हे सर्वोपरि विराजमान परब्रह्मन्! आप "**ऊर्ध्वः**" सबसे उत्कृष्ट हो, हमको कृपा से उत्कृष्ट गुणवाले करो, तथा ऊर्ध्व देश में हमारी रक्षा करो। हे सर्वपापप्रणाशकेश्वर! हमको "**केतुना**" विज्ञान अर्थात् विविध विद्यादान दे के

"**अंहसः**" अविद्यादि महापाप से "**निपाहि**" नितरां पाहि—सदैव अलग रखो। तथा "**विश्वम्**" इस सकल संसार का भी नित्य पालन करो। हे सत्यमित्र न्यायकारिन्! जो कोई प्राणी "**अत्रिणम्**" हम से शत्रुता करता है उसको और काम क्रोधादि शत्रुओं को आप "**संदह**" सम्यक् भस्मीभूत करो (अच्छे प्रकार जलाओ)। "**कृधी न ऊर्ध्वान्**" हे कृपानिधे! हमको विद्या, शौर्य, धैर्य, बल, पराक्रम, चातुर्य, विविध धन ऐश्वर्य, विनय, साम्राज्य, सम्मति, सम्प्रीति, स्वदेशसुखसंपादनादि गुणों में सब नरदेहधारियों से अधिक उत्तम करो तथा "**चरथाय जीवसे**" सबसे अधिक आनन्दभोग, सब देशों में अव्याहतगमन (इच्छानुकूल जाना आना) आरोग्य देह, शुद्ध मानस-बल और विज्ञान इत्यादि के लिए हमको उत्तमता और अपनी पालनायुक्त करो। "**विदा**" विद्यादि उत्तमोत्तम धन "**देवेषु**" विद्वानों के बीच में प्राप्त करो अर्थात् विद्वानों के मध्य में भी उत्तम प्रतिष्ठायुक्त सदैव हमको रक्खो॥ १६॥

प्रार्थना विषय

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः।
विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदिति-
र्जनित्वम्॥ १७॥ १। ८९। १०॥

व्याख्यान—हे त्रैकाल्याबाध्येश्वर! "**अदितिर्द्यौः**" आप सदैव विनाशरहित तथा स्वप्रकाशस्वरूप हो। "**अदिति-रन्तरिक्षम्**" अविकृत (विकार को न प्राप्त) और सबके अधिष्ठाता हो। "**अदितिर्माता**" आप प्राप्तमोक्ष जीवों को अविनश्वर (विनाशरहित) सुख देने और अत्यन्त मान करने

वाले हो। "**स पिता**" सो अविनाशीस्वरूप हम सब लोगों के पिता (जनक) और पालक हो और "**स पुत्रः**" सो ईश्वर आप मुमुक्ष धर्मात्मा और विद्वानों को नरकादि दुःखों से पवित्र और त्राण (रक्षण) करने वाले हो। "**विश्वे देवा अदितिः**" सब देव=दिव्यगुण—विश्व का धारण, रचन, मारण, पालन आदि कार्यों को करने वाले अविनाशी परमात्मा आप ही हैं। "**पञ्चजना अदितिः**" पाँच प्राण जो जगत् के जीवन हेतु वे भी आपके रचे और आपके भी नाम हैं। "**जातमदितिः**" वही एक चेतन ब्रह्म आप सदा प्रादुर्भूत हैं, और सब कभी प्रादुर्भूत, कभी अप्रादुर्भूत (विनाशभूत) भी हो जाते हैं। "**अदितिर्जनित्वम्**" वही अविनाशीस्वरूप ईश्वर आप सब जगत् का (जनित्वम्) जन्म का हेतु हैं और कोई नहीं॥ १७॥

प्रार्थना विषय

ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयतु विद्वान्।
अर्यमा देवैः सजोषाः॥ १८॥ १।६।१७।१॥

व्याख्यान—हे महाराजाधिराज परमेश्वर! आप हमको "**ऋजुनीती**" सरल (शुद्ध) कोमलत्वादिगुणविशिष्ट चक्रवर्ती राजओं की नीति को "**नयतु**" कृपादृष्टि से प्राप्त करो। आप "**वरुणः**" सर्वोत्कृष्ट होने से वरुण हो, सो सहमको वरराज्य, वरविद्या वरनीति देओ, तथा ["**मित्रः**"] सबके मित्र शत्रुतारहित हो, हमको भी आप मित्रगुणयुक्त न्यायाधीश कीजिये, तथा आप सर्वोत्कृष्ट विद्वान् हो, हमको भी सत्यविद्या

से युक्त सुनीति दे के साम्राज्याधिकारी सद्यः कीजिये, तथा आप "**अर्य्यमा**" (यमराज) प्रियाप्रिय को छोड़ के न्याय में वर्त्तमान हो, सब संसार के जीवों के पाप और पुण्यों को यथायोग्य व्यवस्था करने वाले हो, सो हमको भी आप तादृश करें, जिससे "**देवैः सजोषाः**" आपकी कृपा से विद्वानों वा दिव्यगुणों के साथ उत्तम प्रीतियुक्त आप में रमण और आपका सेवन करने वाले हों। हे कृपासिन्धो भगवन्! हे कृपासिन्धो भगवन्! हम पर सहाय करो, जिससे सुनीतियुक्त हो के हमारा स्वराज्य अत्यन्त बढ़े॥ १८॥

प्रार्थना विषय

त्वं सोमासि सत्पतिस्त्वं राजोत वृत्रहा।
त्वं भद्रो असि क्रतुः॥ १९॥ १। ६। १९। ५॥

व्याख्यान—हे "**सोम**" राजन् सत्पते परमेश्वर! तुम सोम सर्व सवनकर्त्ता (सब का सार निकालने हारे) प्राप्यस्वरूप, शान्तात्मा हो तथा सत्पुरुषों का प्रतिपालन करने वाले हो। तुम्हीं सब के राजा "**उत**" और "**वृत्रहा**" मेघ के रचक, धारक और मारक हो। भद्रस्वरूप, भद्र करने वाले और "**क्रतुः**" सब जगत् के कर्त्ता आप ही हो॥ १९॥

प्रार्थना विषय

त्वं नः सोम विश्वतो रक्षा राजन्नघायतः।
न रिष्येत् त्वावतः सखा॥ २०॥ १। ६। २०। ३॥

व्याख्यान—हे सोम राजन्नीश्वर! तुम "**अघायतः**" जो

कोई प्राणी हम में पापी और पाप करने की इच्छा करने वाले हों "**विश्वतः**" उन सब प्राणियों से हमारी "**रक्ष**" रक्षा करो। जिसके आप सगे मित्र हो "**न रिष्येत्**" वह कभी विनष्ट नहीं होता, किन्तु हमको आपके सहाय से तिलमात्र भी दुःख वा भय कभी नहीं होगा। जो आप का मित्र और जिसके आप मित्र हो उसको दुःख क्योंकर हो॥ २०॥

प्रार्थना विषय

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।
दिवी व चक्षुराततम्॥ २१॥ १।२।७।५॥

व्याख्यान—हे विद्वान् और मुमुक्ष जीवो! विष्णु का जो परम अत्यन्तोत्कृष्ट पद (पदनीय) सबके जानने योग्य, जिस को प्राप्त हो के पूर्णानन्द में रहते हैं, फिर वहाँ से कभी दुःख में नहीं गिरते, उस पद को "**सूरयः**" धर्मात्मा जितेन्द्रिय, सब के हितकारक विद्वान् लोग यथावत् अच्छे विचार से देखते हैं, वह परमेश्वर का पद है। किस दृष्टान्त से? कि जैसे आकाश में "**चक्षुः**" नेत्र की व्याप्ति वा सूर्य का प्रकाश सब ओर से व्याप्त है वैसे ही "**दिवीव चक्षुराततम्**" परब्रह्म सब जगह में परिपूर्ण एकरस भर रहा है। वही परमपदस्वरूप परमात्मा परमपद है। इसी की प्राप्ति होने से जीवन सब दुःखों से छूटता है, अन्यथा जीव को कभी सुख नहीं मिलता। इससे सब प्रकार परमेश्वर की प्राप्ति में यथावत् प्रयत्न करना चाहिये॥ २१॥

प्रार्थना विषय

स्थिरा वः सन्त्वायुधा पराणुदे वीळू उत प्रतिष्कभे। युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी मा मर्त्यस्य मायिनः॥ २२॥ १।३।१८।२॥

व्याख्यान—(परमेश्वरो हि सर्वजीवेभ्य आशीर्ददाति) ईश्वर सब जीवों को आशीर्वाद देता है कि, हे जीवो! "**वः**" (युष्माकम्) तुम्हारे आयुध अर्थात् शतघ्नी (तोप) भुशुण्डी (बन्दूक) धनुष, बाण, असि (तलवार), शक्ति (बरछी) आदि शस्त्र स्थिर और "**वीळू**" दृढ़ हों। किस प्रयोजन के लिये? "**पराणुदे**" तुम्हारे शत्रुओं के पराजय के लिये जिससे तुम्हारे कोई दुष्ट शत्रु लोग कभी दुःख न दे सकें। "**उत प्रतिष्कभे**" शत्रुओं के वेग को थामने के लिये। "**युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी**" तुम्हारी बलरूप उत्तम सेना सब संसार में प्रशंसित हो, जिससे तुमसे लड़ने को शत्रु का कोई संकल्प भी न हो, परन्तु "**मा मर्त्यस्य मायिनः**" जो अन्यायकारी मनुष्य है उसको हम आशीर्वाद नहीं देते। दुष्ट, पापी, ईश्वरभक्तिरहित मनुष्य का बल और राज्यैश्वर्यादि कभी मत बढ़ो उसका पराजय ही सदा हो। हे बन्धुवर्गो! आओ अपने सब मिलके सर्व दुःखों का विनाश और विजय के लिये ईश्वर को प्रसन्न करें, जो अपने को वह ईश्वर आशीर्वाद देवे, जिससे अपने शत्रु कभी न बढ़ें॥ २२॥

स्तुति विषय

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे। इन्द्रस्य युज्यः सखा॥ २३॥ १।२।७।४॥

व्याख्यान—हे जीवो! "**विष्णोः**" व्यापकेश्वर के किये दिव्य जगत् की उत्पत्ति स्थिति प्रलय आदि कर्मों को तुम देखो। (प्रश्न) किस हेतु से हम लोग जानें कि व्यापक विष्णु के कर्म हैं? (उत्तर) "**यतो व्रतानि पस्पशे**" जिससे हम लोग ब्रह्मचर्यादि व्रत तथा सत्यभाषणादि व्रत, और ईश्वर के नियमों का अनुष्ठान करने को जीव सशरीरधारी होके समर्थ हुए हैं। यह काम उसी के सामर्थ्य से है। क्योंकि "**इन्द्रस्य युज्यः सखा**" इन्द्रियों के साथ वर्त्तमान कर्मों का कर्त्ता भोक्ता जो जीव इसका वही एक योग्य मित्र है अन्य कोई नहीं, क्योंकि ईश्वर जीव का अन्तर्यामी है, उससे परे जीव का हितकारी कोई और नहीं हो सकता, इससे परमात्मा से सदा मित्रता रखनी चाहिये॥ २३ ॥

प्रार्थना विषय

परा णुदस्व मघवन्नमित्रान्त्सुवेदा नो वसू कृधि।
अस्माकं बोध्यविता महाधने भवा वृधः सखीनाम्॥ २४॥
५।३।२१।५॥

व्याख्यान—हे "**मघवन्**" परमैश्वर्यवन् इन्द्र परमात्मन्! "**अमित्रान्**" हमारे सब शत्रुओं को "**पराणुदस्व**" परास्त कर दे। हे दातः "**सुवेदाः नो वसू कृधिः**" "**अस्माकं बोध्यविता**" हमारे लिये सब पृथिवी के धन सुलभ (सुख से प्राप्त) कर। "**महाघने**" युद्ध में हमारे और हमारे मित्र तथा सेनादि के "**अविता**" रक्षक "**वृधः**" वर्द्धक "**भव**" आप ही हो तथा "**बोधि**" हमको अपने ही जानो। हे भगवन्! जब आप हमारे योद्धारक्षक होंगे, तभी हमारा सर्वत्र विजय

होगा, इसमें सन्देह नहीं॥ २४॥

प्रार्थना विषय

शं नो भगः शमुनः शंसो अस्तु शंनः पुरन्धिः शमु सन्तु रायः। शंन सत्यस्यसुयमस्यसुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु॥ २५॥ ५। ३। २८। २॥

व्याख्यान—हे ईश्वर! "**भगः**" आप और आपका दिया हुआ ऐश्वर्य "**शं नः**" हमारे लिये सुखकारक हो "**शमु न शंसो अस्तु**" आपकी कृपा से हमारी सुखकारक प्रशंसा सदैव हो। "**पुरन्धिः शमु सन्तु रायः**" संसार के धारण करने वाले आप तथा वायु, प्राण और सब धन आपकी कृपा से आनन्ददायक हों। "**शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः**" सत्य यथार्थ धर्म सुसंयम और जितेन्द्रियादिलक्षणयुक्त की जो प्रशंसा (पुण्यस्तुति) सब संसार में प्रसिद्ध है वह परमानन्द और शान्तियुक्त हमारे लिये हो। "**शं नो अर्यमा**" न्यायकारी आप "**पुरुजातः**" अनन्त सामर्थ्ययुक्त हमारे कल्याणकारक होओ॥ २५॥

स्तुति विषय

त्वमसि प्रशस्यो विदथेषु सहन्त्य।
अग्ने रथीरध्वराणाम्॥ २६॥ ५। ८। ३५। २॥

व्याख्यान—हे "**अग्ने**" सर्वज्ञ! तू ही सर्वत्र "**प्रशस्यः**" स्तुति करने के योग्य है अन्य कोई नहीं। "**विदथेषुं**" यज्ञ और युद्धों में आप ही स्तोतव्य हो। जो तुम्हारी स्तुति को

छोड़ के अन्य जड़ादि की स्तुति करता है उसके यज्ञ तथा युद्धों में विजय कभी सिद्ध नहीं होता है। "**सहन्त्य**" शत्रुओं के समूहों के आप ही घातक हो। "**रथीरध्वराणाम्**" अध्वरों अर्थात् यज्ञ और युद्धों में आप ही रथी हो। हमारे शत्रुओं के योद्धाओं को जीतने वाले हो, इस कारण से हमारा पराजय कभी नहीं हो सकता॥ २६॥

प्रार्थना विषय

तन्न इन्द्रो वरुणो मित्रो अग्निराप ओषधीर्वनिनो जुषन्त। शर्मन्त्स्याम मरुतामुपस्थे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ २७॥ ५।३।२७।५॥

व्याख्यान—हे भगवन्! "**तन्न इन्द्रः**" सूर्य "**वरुणः**" चन्द्रमा "**मित्रः**" वायु "**अग्निः**" अग्नि "**आपः**" जल "**ओषधीः**" वृक्षादि वनस्थ सब पदार्थ आप की आज्ञा से सुखरूप हो कर हमारा सेवन करें। हे रक्षक! "**मरुतामुपस्थे**" प्राणादि के सुसमीप बैठे हुए हम आपकी कृपा से "**शर्मन्त्स्याम**" सुखयुक्त सदा रहैं। "**स्वस्तिभिः**" सब प्रकार के रक्षणों से "**यूयं पात**" (आदरार्थ बहुवचनम्) आप हमारी रक्षा करो। किसी प्रकार से हमारी हानि न हो॥ २७॥

स्तुति विषय

ऋषिर्हि पूर्वजा अस्येक ईशान ओजसा।
इन्द्र चोष्कूयसे वसु॥ २८॥ ५।८।१७।१॥

व्याख्यान—हे ईश्वर! "**ऋषिः**" सर्वज्ञ "**पूर्वजाः**"

और सब के पूर्वज्ञजनक के "**एकः**" अद्वितीय "**ईशानः**" ईशनकर्त्ता (अर्थात् ईश्वरता करने हारे) तथा सब से बड़े प्रलयोत्तरकाल में आप ही रहने वाले, "**ओजसा**" अनन्तपराक्रम से युक्त हो। हे इन्द्र महाराजाधिराज! "**चोष्कूयसे वसु**" सब धन के दाता शीघ्र कृपा का प्रवाह अपने सेवकों पर कर रहे हो। आप अत्यन्त आर्द्रस्वभा हो॥ २८॥

प्रार्थना विषय

नेह भद्रं रक्षस्विने नावयै नोपया उत। गवे च भद्रं धेनवे वीराय च श्रवस्यतेऽनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः॥ २९॥ ६।४।९।२॥

व्याख्यान—हे भगवान्! "**रक्षस्विने भद्रं नेह**" पापी हिंसक दुष्टात्मा को इस संसार में सुख मत देना। "**नावयै**" धर्म से विपरीत चलने वाले को सुख कभी मत हो। तथा "**नोपया उत**" अधर्मी के समीप रहने वाले उसके सहायक को भी सुख नहीं हो। ऐसी प्रार्थना आप से हमारी है कि दुष्ट को सुख कभी न होना चाहिए, नहीं तो कोई जन धर्म में रुचि ही न करेगा, किन्तु इस संसार में धर्मात्माओं को ही सुख सदा दीजिये। तथा हमारी शमदमादियुक्त इन्द्रियाँ, दुग्ध देने वाली गौ आदि, वीर पुत्र और शूरवीर भृत्य "**श्रवस्यते**" विद्या विज्ञान और अन्नाद्यैश्वर्ययुक्त हमारे देश के राजा और धनाढ्यजन तथा इनके लिये "**अनेहसः**" निष्पाप निरुपद्रव स्थिर दृढ़ सुख हो। "**व ऊतयो व ऊतयः**" (वः युष्माकं, बहुवचनमादरार्थम्) हे सर्वरक्षकेश्वर! आप सब रक्षण अर्थात् पूर्वोक्त सब धर्मात्माओं के रक्षक हैं। जिन पर

आप रक्षक हो उनको सदैव "**भद्रम्**" कल्याण (परमसुख) प्राप्त होता है, अन्य को नहीं॥ २९॥

स्तुति विषय

वसुर्वसुपतिर्हि कमस्यग्ने विभावसुः।
स्याम ते सुमतावपि॥ ३०॥ ६।३।४०।४॥

व्याख्यान—हे परमात्मा! आप "**वसुः**" अर्थात् सबको अपने में बसाने वाले और सब में आप बसने वाले हो। तथा "**वसुपतिः**" पृथिव्यादि वासहेतुभूतों के पति हो। "**कमसि**" हे अग्ने विज्ञानानन्द स्वप्रकाशस्वरूप! आप ही सब के सुखकारक और सुखस्वरूप हो। तथा "**विभावसुः**" सत्यस्वप्रकाशैकधनमय हो। हे भगवन्! ऐसे जो आप, उन "**ते**" आप की "**सुमतौ**" अत्यन्तोत्कृष्ट ज्ञान और परस्पर प्रीति में हम लोग स्थिर हों॥ ३०॥

प्रार्थना विषय

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः।
इतो जातो विश्वमिदं वि चष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण॥ ३१॥ १।७।६।१॥

व्याख्यान—हे मनुष्यो! जो हमारा तथा सब जगत् का राजा, सब भुवनों का स्वामी "**कम्**" सब का सुखदाता और "**अभिश्रीः**" सब का निधि (शोभाकारक) है। "**वैश्वानरो यतते सूर्येण**" संसारस्थ सब नरों का नेता (नायक) और

सूर्य के साथ ही वही प्रकाशक है अर्थात् सब प्रकाशक पदार्थ उसके रचे हैं। ''**इतो जातो विश्वमिदं विचष्टे**'' इसी ईश्वर के सामर्थ्य से ही यह संसार उत्पन्न हुआ है अर्थात् उसने रचा है। ''**वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम**'' उस वैश्वानर परमेश्वर की सुमति अर्थात् सुशोभन (उत्कृष्ट) ज्ञान में हम निश्चित सुखस्वरूप और विज्ञान वाले हों। हे महाराजाधिराजेश्वर! आप इस हमारी आशा को कृपा से पूरी करो॥ ३१ ॥

स्तुति विषय

न यस्य देवा देवता न मर्ता आपश्चन शवसो अन्तमापुः। स प्रिरिक्वात्वक्षसा क्ष्मो दिवश्च मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती॥ ३२ ॥ १।७।१०।५॥

व्याख्यान—हे अनन्तबल! ''**न यस्य**'' जिस परमात्मा का और उसके बलादि सामर्थ्य का ''**देवाः**'' इन्द्रिय ''**देवताः**'' विद्वान् सूर्यादि तथा बुद्ध्यादि ''**न मर्ताः**'' साधारण मनुष्य ''**आपश्चन**'' आप, प्राण, वायु, समुद्र इत्यादि सब ''**अन्तम्**'' पार कभी नहीं पा सकते, किन्तु ''**प्ररिक्वा**'' प्रकृष्टता से इनमें व्यापक हो के अतिरिक्त (इनसे विलक्षण) भिन्न ही परिपूर्ण हो रहा है सो ''**मरुत्वान्**'' अत्यन्त बलवान् इन्द्र परमात्मा ''**त्वक्षसा**'' शत्रुओं के बल का छेदक बल से ''**क्ष्मः**'' पृथिवी को ''**दिवश्च**'' स्वर्ग को धारण करता है सो ''**इन्द्रः**'' परमात्मा ''**ऊती**'' हमारी रक्षा के लिए ''**भवतु**'' तत्पर हो॥ ३२ ॥

प्रार्थना विषय

**जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं
दुरितात्यग्निः॥ ३३॥ १।७।७।१॥**

व्याख्यान—हे "**जातवेदः**" परब्रह्मन्! आप जातवेद हो, उत्पन्नमात्र सब जगत् को जानने वाले हो, सर्वत्र प्राप्त हो, जो विद्वानों से ज्ञात सब में विद्यमान जात अर्थात् प्रादुर्भूत अनन्त धनवान् वा अनन्त ज्ञानवान् हो इस से आपका नाम जातवेद है, उन आप के लिये "**वयं सोमं सुनवाम**" जितने सोम प्रिय गुण विशिष्टादि हमारे पदार्थ हैं, वे सब आपके ही लिये हैं। सो आप हे कृपालो! "**अरातीयतः**" दुष्ट शत्रु जो हम धर्मात्माओं का विरोधी उसके "**वेदः**" धनैश्वर्यादि "**निदहाति**" नित्य दहन करो, जिससे वह दुष्टता को छोड़ के शेष्ठता को स्वीकार करे। सो "**नः**" हमको "**दुर्गाणि विश्वा**" सम्पूर्ण दुस्सह दुःखों से "**पर्षदति**" पार करके आप नित्य सुख को प्राप्त करो। "**नावेव सिन्धुम्**" जैसे अति कठिन नदी वा समुद्रपार होने के लिये नौका होती है "**दुरितात्यग्निः**" वैसे ही हम को सब पापजनित अत्यन्त पीड़ाओं से पृथक् (भिन्न) करके संसार में और मुक्ति में ही परम सुख को सीघ्र प्राप्त करो॥ ३३॥

स्तुति विषय

**स वज्रभृद्दस्युहा भीम उग्रः सहस्रचेताः शतनीथ
ऋभ्वा। चम्रीषो न शवसा पाञ्चजन्यो मरुत्वान्नो
भवत्विन्द्र ऊती॥ ३४॥ १।७।१०।२॥**

व्याख्यान—हे दुष्टनाशक परमात्मन्! आप "**वज्रभृत्**" अच्छेद्य (दुष्टों के छेदक) सामर्थ्य से सर्वशिष्ट हितकारक दुष्टविनाशक जो न्याय उसको धारण कर रहे हो, "**प्राणो वा वज्रः**" इत्यादि शतपथादि का प्रमाण है। अतएव "**दस्युहा**" दुष्ट पापी लोगों का हनन करने वाले हो "**भीमः**" आपकी न्याय आज्ञा को छोड़ने वालों पर भयंकर भय देने वाले हो। "**सहस्रचेताः**" सहस्रों विज्ञानादि गुण वाले आप ही हो। "**शतनीथः**" सैकड़ों, असंख्यात (पदार्थों) की प्राप्ति कराने वाले हो। "**ऋभ्वा**" अत्यन्त विज्ञानादि प्राकाश वाले हो और सबके प्रकाशक हो तथा महान् वा महाबल वाले हो। "**न चम्रीषः**" किसी की चमू (सेना) में वश को प्राप्त नहीं होते हो। "**शवसा**" किसी की चमू (सेना) में वश को प्राप्त नहीं होते हो। "**शवसा**" स्वबल से आप "**पाञ्चजन्यः**" पाँच प्राणों के जनक हो। "**मरुत्वान्**" सब प्रकार के वायुओं के आधार तथा चालक हो। सो आप ["**इन्द्रः**"] इन्द्र हमारी रक्षा के लिये प्रवृत्त हों, जिससे हमारा कोई काम बिगड़े नहीं॥ ३४॥

प्रार्थना विषय

सेमं नः काममापृण गोभिरश्वैः शतक्रतो।
स्तवाम त्वा स्वाध्यः॥ ३५॥ १। १। ३१। ४॥

व्याख्यान—हे "**शतक्रतो**" अनन्तक्रियेश्वर! आप असंख्यात विज्ञानादि यज्ञों से प्राप्य हो तथा अनन्तक्रियाबलयुक्त हो। सो आप "**गोभिरश्वैः**" गाय, उत्तम इन्द्रिय, श्रेष्ठ पशु, सर्वोत्तम अशविद्या (विमानादियुक्त) तथा अश्व अर्थात् श्रेष्ठ

घोड़ादि पशुओं और चक्रवर्ती राज्यैश्वर्य्य से **"सेमं नः काममापृण"** हमारे काम को परिपूर्ण करो। फिर हम भी **"स्तवाम त्वा स्वाध्यः"** सुबुद्धियुक्त हो के उत्तम प्रकार से आपका स्तवन (स्तुति) करें। हमको दृढ़ निश्चय है कि आपके बिना दूसरा कोई किसी का काम पूर्ण नहीं कर सकता। आपको छोड़ के दूसरे का ध्यान व याचना जो करते हैं उनके सब काम नष्ट हो जाते हैं॥ ३५॥

स्तुति विषय

सोम गीर्भिष्ट्वा वयं वर्द्धयामो वचोविदः।
सुमृळीको न आ विश॥ ३६॥ १। ६। २१। १॥

व्याख्यान—हे **"सोम"** सर्वजगदुत्पादकेश्वर! आपको **"वचोविदः"** शास्त्रवित् हम लोग स्तुतिसमूह से **"वर्द्धयामः"** सर्वोपरि विराजमान मानते हैं। **"सुमृडीकः नः आविश"** क्योंकि हमको सुष्ठु सुख देने वाले आप ही हो, सो कृपा करके हमको आप आदेश करो, जिससे हम लोग अविद्यान्धकार से छूट और विद्यासूर्य को प्राप्त हो के आनन्दित हों॥ ३६॥

प्रार्थना विषय

सोम ररन्धि नो हृदि गावो न यवसेष्वा।
मर्यइव स्व ओक्ये॥ ३७॥ १। ६। २१। ३॥

व्याख्यान—हे **"सोम"** सौम्य सौख्यप्रदेश्वर! आप कृपा

करके "**रारन्धि नो हृदि**" हमारे हृदय में यथावत् रमण करो। (दृष्टान्त) जैसे सूर्य की किरण विद्वानों का मन और गाय पशु अपने-अपने विषय और घासादि में रमण करते हैं, वा जैसे "**मर्यइव स्वे ओक्ये**" मनुष्य अपने घर में रमण करता है, वैसे ही आप सदा स्वप्रकाशयुक्त हमारे हृदय (आत्मा) में रमण कीजिये, जिससे हमको यथार्थ सर्व ज्ञान और आनन्द हो॥ ३७॥

स्तुति विषय

गयस्फानो अमीवहा वसुवित्पुष्टिवर्धनः।
सुमित्रः सोम नो भव॥ ३८॥ १।६।२१।२॥

व्याख्यान—हे परमात्मभक्त जीवो! अपना इष्ट जो परमेश्वर, सो "**गयस्फानः**" प्रजा, धन, जनपद और स्वराज्य बढ़ाने वाला है, तथा "**अमीवहा**" शरीर इन्द्रियजन्य और मानस रोगों का हनन (विनाश) करने वाला है। "**वसुवित्**" सब पृथिव्यादि वसुओं का जानने वाला है अर्थात् सर्वज्ञ और विद्यादि धन का दाता है, "**पुष्टिवर्धनः**" अपने शरीर, इन्द्रिय मन और आत्मा की पुष्टि का बढ़ाने वाला है। "**सुमित्रः सोम नो भव**" सुष्ठु, यथावत् सबका परम मित्र वही है। सो अपने उससे यह मांगें कि हे सोम सर्वजगदुत्पादक! आप ही कृपा करके हमारे सुमित्र हो और हम भी सब जीवों के मित्र हों तथा अत्यन्त मित्रता आप से ही रखें॥ ३८॥

प्रार्थना विषय

त्वं हि वश्विातोमुख विश्वतः परिभूरसि।
अप न शोशुचदघम्॥ ३९॥ १।७।५।६॥

व्याख्यान—हे अग्ने परमात्मन्! "**त्वं, हि**" तू ही "**विश्वतः परिभूरसि**" सब जगत् में सब ठिकानों में व्याप्त हो, अत एव आप विश्वतोमुख हो। हे सर्वतोमुख अग्ने! आप स्वमुख नाम स्वशक्ति से सब जीवों के हृदय में सत्योपदेश नित्य ही कर रहे हो वही आपका मुख है। हे कृपालो! "**अप नः शोशुचदघम्**" आप की इच्छा से हमारा पाप सब नष्ट हो जाय, जिससे हम लोग निष्पाप हो के आपकी भक्ति और आज्ञापालन में नित्य तत्पर रहें॥ ३९॥

स्तुति विषय

तमीळत प्रथमं यज्ञसाधं विश आरीराहुतमृञ्जसानम्।
ऊर्जः पुत्रं भरतं सृप्रदानुं देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम॥ ४०॥ १।७।३।३॥

व्याख्यान—हे मनुष्यो! "**तमीळत**" उस अग्नि की स्तुति करो, कैसा है वह अग्नि "**प्रथमम्**" सब (कार्यों) से पहले वर्त्तमान और सब का आदि कारण है, तथा "**यज्ञसाधम्**" सब संसार और विज्ञानादि यज्ञ का साधक (सिद्ध करने वाला) सबका जनक है। हे "**विशः**" मनुष्य! उसी को ही स्वामी मानकर "**आरीः**" प्राप्त होओ, जिसको हम अपने पुकारते हैं, और जिसको विज्ञानादि से विद्वान् लोग सिद्ध करते हैं और जानते हैं। "**ऊर्जः पुत्रं भरतम्**"

पृथिव्यादि जगत्रूप अन्न का पुत्र अर्थात् पालन करने वाला, तथा भरत अर्थात् उसी अन्न का पोषण और धारण करने वाला है। "**सूप्रदानुम्**" सब जगत् को चलने की शक्ति देने वाला और ज्ञान का दाता है। उसी को "**देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम्**" देव (विद्वान् लोग) अग्नि कहते और धारण करते हैं। वही सब जगत् को द्रविण अर्थात् निर्वाह के सब अन्न जलादि पदार्थ और विद्यादि पदार्थों का देने वाला है। उस अग्नि परमात्मा को छोड़ के अन्य किसी की भक्ति वा याचना कभी किसी को न करनी चाहिये॥ ४० ॥

स्तुति विषय

तमूतयो रणयञ्छूरसातौ तं क्षेमस्य क्षितयः कृण्वत त्राम्। स विश्वस्य वरुणस्येश एको मरुत्वान्नो भवत्विन्द्रऊती॥ ४१ ॥ १।७।९।२॥

व्याख्यान—हे मनुष्यो! "**तमूतयः**" उसी इन्द्र परमात्मा की प्रार्थना तथा शरणागति से अपने को "**ऊतयः**" अनन्त रक्षण तथा बलादि गुण प्राप्त होंगे। "**शूरसातौ**" युद्ध में अपने को यथावत् "**रणयन्**" रमण और रणभूमि में शूर-वीरों के गुण परस्पर प्रीत्यादि प्राप्त करावेगा। "**तं क्षेमस्य क्षितयः**" हे शूरवीर मनुष्यो! उसी को क्षेम कुशलता का "**त्राम्**" रक्षक "**कृण्वत**" करो, जिससे अपना पराजय कभी न हो। क्योंकि, "**सः विश्वस्य**" सो करुणामय, सब जगत् पर करुणा करने वाला "**एकः**" एक ही है, अन्य कोई नहीं। सो परमात्मा "**मरुत्वान्**" प्राण वायु, बल, सेनायुक्त "**ऊती**" (ऊतये) सम्यक् हम लोगों पर कृपा से रक्षक हो। ईश्वर से रक्षित

हम लोग कभी पराजय को न प्राप्त हों॥४१॥

स्तुति विषय

स पूर्वया निविदा कव्यातायोरिमाः प्रजा अजनयन् मनूनाम्। विवस्वता चक्षसा द्यामपश्चदेवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम्॥४२॥ १।७।३।२॥

व्याख्यान—हे मनुष्यो! सो ही ''**पूर्वया निविदा**'' आदि सनातन, सत्यता आदि गुणयुक्त अग्नि परमात्मा था, अन्य कोई नहीं था। तब सृष्टि के आदि में स्वप्रकाशस्वरूप एक ईश्वर प्रजा की उत्पत्ति की ईक्षणता (विचार) [करता भया। ''**कव्यतायो०**'' सर्वज्ञतादि सामर्थ्य से ही सत्यविद्यायुक्त वेदों की तथा ''**मनूनाम्**'' मननशीलवाले मनुष्यों की तथा अन्य पशुवृक्षादि की ''**प्रजाः**'' प्रजा को ''**अजनयत्**'' उत्पन्न किया, परस्पर मनुष्य और पशु आदि के व्यवहार चलने के लिये, परन्तु मननशीलवाले मनुष्यों को अवश्य स्तुति करने योग्य वही है। ''**विवस्वता चक्षसा**'' सूर्यादि तेजस्वी सब पदार्थों का प्रकाशने वाला बल से, स्वर्ग (सुखविशेष) सब लोक ''**अपः**'' अन्तरिक्ष में पृथिव्यादि मध्यम लोक] और निकृष्ट दुःख विशेष नरक और सब दृश्यमान तारे आदि लोक उसी ने रचे हैं, जो ऐसा सच्चिदानन्दस्वरूप परमेश्वर देव है। उसी ''**द्रविणोदाम्**'' विज्ञानादि धन देने वाले को ही ''**देवाः**'' विद्वान् लोग अग्नि जानते हैं, हम लोग उसी को ही भजें॥४२॥

प्रार्थना विषय

वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंशमुदवा भरेभरे। अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन् वृष्ण्या रुज॥ ४३॥ १।७।१४।४॥

व्याख्यान—हे इन्द्र परमात्मन्! "**त्वया युजा वयं जयेम**" आपके साथ वर्तमान, आपके सहाय से हम लोग दुष्ट शत्रुओं को जीतें। कैसा वह शत्रु? कि "**आवृतम्**" हमारे बल से घिरा हुआ। हे महाराजाधिराजेश्वर! "**भरे-भरे अस्माकमंशमुदवा**" युद्ध युद्ध (प्रत्येक युद्ध) में हमारे अंश (बल) सेना का "**उदव**" उत्कृष्ट रीति से कृपा करके रक्षण करो, जिससे किसी युद्ध में क्षीण हो के हम पराजय को प्राप्त न हों। किन्तु जिनको आपका सहाय है, उनका सर्वत्र विजय ही होता है। हे "**इन्द्र मघवन्**" महाधनेश्वर! "**शत्रूणां वृष्ण्या**" हमारे शत्रुओं के (वीर्य्य) पराक्रमादि को "**प्ररुज**" प्रभग्न-रुग्ण करके नष्ट कर दे। "**अस्मभ्यं वरिवः सुगं कृधि**" हमारे लिए चक्रवर्ती राज्य और साम्राज्य धन को "**सुगम्**" सुख से प्राप्त कर अर्थात् आपकी करुणा कटाक्ष से हमारा राज्य और धन सदा वृद्धि को प्राप्त हो॥ ४३॥

स्तुति विषय

यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पतिर्यो ब्रह्मणे प्रथमो गा अविन्दत्। इन्द्रो यो दस्यूँरधराँ अवातिरन् मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे॥ ४४॥ १।७।१२।५॥

व्याख्यान—हे मनुष्यो! जो सब जगत् (स्थावर) जड़

अप्राणी का और **"प्राणतः"** चेतनावाले जगत् का **"पतिः"** अधिष्ठाता और पालक है तथा जो सब जगत् के प्रथम सदा से है, और **"ब्रह्मणे गाः अविन्दत्"** जिसने यही नियम किया है कि ब्रह्म अर्थात् विद्वान् के ही लिये पृथिवी का लाभ और उनका राज्य है, और जो **"इन्द्र"** परमैश्वर्यवान् परमात्मा डाकुओं को **"अधरान्"** नीचे गिराता है, तथा उनको मार ही डालता है, **"मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे"** सो आओ मित्रो भाई लोगो! अपने सब संप्रीति से मिल के मरुत्वान् अर्थात् परमानन्त बल वाले इन्द्र परमात्मा को सखा होने के लिये अत्यन्त प्रार्थना से गद्‌गद् होके पुकारें। वह शीघ्र ही कृपा करके अपने से सखित्व (परम मित्रता) करेगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं।

प्रार्थना विषय

मृळा नो रुद्रोत नो मयस्कृधि क्षयद्वीराय नमसा विधेम ते। यच्छं च योश्च मनुरायेजे पिता तदश्याम तव रुद्र प्रणीतिषु॥ ४५॥ १।८।५।२॥

व्याख्यान—हे दुष्टों को रुलानेहारे रुद्रेश्वर! हमको **"मृड"** सुखी कर तथा **"मयस्कृधि"** हमको मय अर्थात् अत्यन्त सुख का सम्पादन कर। **"क्षयद्वीराय नमसा विधेम ते"** शत्रुओं के वीरों का क्षय करने वाले आपको अत्यन्त नमस्कारादि से परिचर्या करनेवाले हम लोगों का रक्षण यथावत् कर। **"यच्छम्"** हे रुद्र! आप हमारे पिता (जनक) और पालक हो हमारी सब प्रजा को सुखी कर, **"योश्च"** और प्रजा के रोगों का भी नाश कर जैसे **"मनुः"** मान्यकारक

पिता "**आयेजे**" स्वप्रजा को संगत और अनेकविध लाड़न करता है, वैसे आप हमारा पालन करो। हे रुद्र भगवन्! "**तव प्रणीतिषु:**" आपकी आज्ञा का प्रणय अर्थात् उत्तम न्याययुक्त नीतियों में प्रवृत्त होके "**तदश्याम**" वीरों के चक्रवर्ती राज्य को आपके अनुग्रह से प्राप्त हों॥ ४५ ॥

स्तुति विषय

देवो न यः पृथिवीं विश्वधाया उपक्षेति हितमित्रो न राजा। पुरःसदः शर्मसदो न वीरा अनवद्या पतिजुष्टेव नारी॥ ४६ ॥ १।५।१९।३॥

व्याख्यान—हे प्रियबन्धु विद्वानो! "**देवो न**" ईश्वर सब जगत् के बाहर और भीतर सूर्य की नाईं प्रकाश कर रहा है। "**यः पृथिवीम्**" जो पृथिव्यादि जगत् को रच के धारण कर रहा है, और "**विश्वधाया उपक्षेति**" विश्वधारकशक्ति का भी निवास देने और धारण करने वाला है, तथा जो सब जगत् का परम मित्र अर्थात् जैसे "**हितमित्रो न राजा**" प्रियमित्रवान् राजा अपनी प्रजा का यथावत् पालन करता है, वैसे ही हम लोगों का पालनकर्त्ता वही एक है, अन्य कोई भी नहीं। "**पुरः सदः शर्मसदो न वीराः**" जो जन ईश्वर के पुरःसदः हैं (ईश्वराभिमुख ही हैं), वे ही शर्मसदः अर्थात् सुख में सदा स्थिर रहते हैं। जैसे "**न वीराः**" पुत्र लोग अपने पिता के घर में आनन्दपूर्वक निवास करते हैं, वैसे ही जो परमात्मा के भक्त हैं वे सदा सुखी ही रहते हैं, परन्तु जो अनन्यचित्त हो के निराकार सर्वत्र व्याप्त ईश्वर की सत्य श्रद्धा से भक्ति करते हैं, जैसे कि "**अनवद्या पतिजुष्टेव नारी**"

अत्यन्तोत्तमगुणयुक्त पति की सेवा में तत्पर पतिव्रता नारी (स्त्री) रात दिन, तन, मन, धन से अत्यन्त प्रीतियुक्त हो के अनुकूल ही रहती है, वैसे प्रेमप्रीतियुक्त हो के आओ भाई लोगो! ईश्वर की भक्ति करें और अपने सब मिल के परमात्मा से परमसुख लाभ उठावें॥ ४६ ॥

प्रार्थना विषय

सा मा सत्योक्तिः परि पातु विश्वतो द्यावा च यत्र ततनन्नहानि च। विश्वमन्यन्नि विशते यदेजति विश्वाहापो विश्वहोदेति सूर्यः॥ ४७॥ ७।८।१२।२॥

व्याख्यान—सर्वाभिरक्षकेश्वर! "**सा मा सत्योक्तिः**" आपकी सत्य आज्ञा जि सका हमने अनुष्ठान किया है, वह "**विश्वतः परिपातु**" हमको सब संसार से सर्वथा पालन और सब दुष्ट कामों से सदा पृथक् रक्खे कि कभी हम को अधर्म करने की इच्छा भी न हो, "**द्यावा च**" दिव्य सुख से सदा युक्त करके यथावत् हमारी रक्षा करे। "**यत्र**" जिस दिव्य सृष्टि में "**अहानि**" सूर्यादिकों को दिवस आदि के निमित्त "**ततनन्**" आपने ही विस्तारे हैं, वहां भी हमारा सब उपद्रवों से रक्षण करो। "**विश्वमन्यत्**" आपसे अन्य (भिन्न) विश्व अर्थात् सब जगत् जिस समय आपके सामर्थ्य से (प्रलय में) "**नि विशते**" प्रवेश करता है (कार्य सब कारणात्मक होता है), उस समय में भी आप हमारी रक्षा करो, "**यदेजति**" जिस समय यह जगत् आपके सामर्थ्य से चलित हो के उत्पन्न होता है, उस समय भी सब पीड़ाओं से आप हमारी रक्षा करें। "**विश्वाहापो विश्वाहा**" जो जो विश्व का

हन्ता (दु:ख देने वाला) उसको आप नष्टकर देवो, क्योंकि आपके सामर्थ्य से सब जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होती है, आपके सामने कोई राक्षस (दुष्टजन) क्या कर सकता है? क्योंकि आप सब जगत् में उदित (प्रकाशमान) हो रहे हो। सूर्य्यवत् हमारे हृदय में कृपा करके प्रकाशित होओ, जिससे हमारी अविद्यान्धकारता सब नष्ट हो॥ ४७॥

स्तुति विषय

देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो वसुर्वसूनामसि चारुरध्वरे। शर्मन्त्स्याम तव सप्रथस्तमेऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव॥ ४८॥ १। ६। ३२। ३॥

व्याख्यान—हे मनुष्यो! वह परमात्मा कैसा है? कि हम लोग उसकी स्तुति करें। हे अग्ने परमेश्वर! आप "**देवो देवानामसि**" देवों (परम विद्वानों) के भी देव (परमविद्वान्) हो, तथा उनको परमानन्द देने वाले हो। तथा "**अद्भुतः**" अत्यन्त आश्चर्यरूप मित्र सर्वसुखकारक सबके सखा हो। "**वसुर्वसूनामसि**" पृथिव्यादि वसुओँ के भी वास कराने वाले हो। तथा "**अध्वरे**" ज्ञानादि यज्ञ में "**चारुः**" अत्यन्त शोभायमान और शोभा के देने वाले हो। हे परमात्मन्! "**सप्रथस्तमे सख्ये शर्मन् तव**" आपके अतिविस्तीर्ण, आनन्दस्वरूप सखाओं के कर्म में, हम लोग स्थिर हों, जिससे हमको कभी दु:ख प्राप्त न हो और आपके अनुग्रह से हम लोग परस्पर अप्रीतियुक्त कभी न हों॥ ४८॥

प्रार्थना विषय

मा नो वधीरिन्द्र मा परा दा मा नः प्रिया भोजनानि प्र मोषीः। आण्डा मा नो मघवञ्छक्र निर्भेन् मा नः पात्रा भेत्सहजानुषाणि॥ ४९॥ १।७।१९।३॥

व्याख्यान—हे "**इन्द्र**" परमैश्वर्ययुक्तेश्वर! "**मा नो वधीः**" हमारा वध मत कर अर्थात् अपने से अलग हमको मत गिरावै। "**मा परा दाः**" हमसे अलग आप कभी मत हो। "**मा नः प्रिया०**" हमारे प्रिय भोगों को मत चोर और मत चोरवावै "**आण्डा मा०**" हमारे गर्भों का विदारण मत कर। हे "**मघवन्**" सर्वशक्तिमन् "**शक्र**" समर्थ! हमारे पुत्रों का विदारण मत कर। "**मा नः पात्राः**" हमारे भोजनाद्यर्थ सुवर्णादि पात्रों को हम से अलग मत कर। "**सहजानुषाणि**" जो–जो हमारे सहज अनुषक्त स्वभाव से अनुकूल मित्र हैं, उनको आप नष्ट मत करो अर्थात् कृपा करके पूवोक्त सब पदार्थों की यथावत् रक्षा करो॥ ४९॥

प्रार्थना विषय

मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम्। मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः॥ ५०॥ १।८।६।२॥

व्याख्यान—हे "**रुद्र**" दुष्टविनाशकेश्वर! आप हम पर कृपा करो "**मा नो महान्तम्**" हमारे ज्ञानवृद्ध और वयोवृद्ध पिता इनको आप नष्ट मत करो। तथा "**मा नो अर्भकम्**" छोटे बालक और "**उक्षन्तम्**" वीर्यसेचनसमर्थ जवान तथा

जो गर्भ में वीर्य को सेचन किया है, उसको मत विनष्ट करो तथा हमारे पिता, माता और प्रिय तनुओं (शरीरों) का "**मा रीरिषः**" हिंसन मत करो ॥५० ॥

स्तुति विषय

मा नस्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः। वीरान्मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे ॥ ५१ ॥ १ । ८ । ६ । ३ ॥

व्याख्यान—"**मा नः तोके**" कनिष्ठ, मध्यम और ज्येष्ठ पुत्र, "**आयौ**" उमर, "**गोषु**" गाय आदि पशु "**अश्वेषु**" घोड़ा आदि उत्तम यान, हमारी सेना के शूरों में "**हविष्मन्तः**" यज्ञ के करनेवाले, इन में "**भामितः**" क्रोधित और "**मा रीरिषः**" रोषयुक्त होके कभी प्रवृत्त मत हो। हम लोग आपको "**सदमित्त्वा हवामहे**" सर्वदैव आह्वान करते हैं। हे भगवन् रुद्र परमात्मन्! आपसे यही प्रार्थना है कि हमारी और हमारे पुत्र धनैश्वर्यादि की रक्षा करो ॥५१ ॥

प्रार्थना विषय

उद्गातेव शकुने साम गायसि ब्रह्मपुत्रइव सवनेषु शंससि। वृषेव वाजी शिशुमतीरपीत्या सर्वतो नः शकुने भद्रमा वद विश्वतो नः शकुने पुण्यमावद ॥ ५२ ॥ २ । ८ । १२ । २ ॥

व्याख्यान—हे "**शकुने**" सर्वशक्तिमन्नीश्वर! आप साम को सदा गाते हो वैसे ही हमारे हृदय में सब विद्या का प्रकाशित गान करो। जैसे यज्ञ में महापण्डित सामगान करता

है, वैसे आप भी हम लोगों के बीच में सामादि विद्या का गान (प्रकाश) कीजिये। "**ब्रह्मपुत्रइव सवनेषु**" आप कृपा से सवन (पदार्थविद्याओं) की "**शंससि**" प्रशंसा करते हो, वैसे हमको भी यथावत् प्रशंसित करो। जैसे "**ब्रह्मपुत्रइव**" वेदों का वेत्ता विज्ञान से सब पदार्थों की प्रशंसा करता है, वैसे आप भी हम पर कृपा कीजिये। आप "**वृषेव वाजी**" सर्वशक्ति का सेचन करने और अन्नादि पदार्थों के दाता तथा महाबलवान् और वेगवान् होने से वाजी हो। जैसा कि वृषभ की नाईं आप उत्तम गुण और उत्तम पदार्थों की वृष्टि करने वाले हो, वैसे हम पर उनकी वृष्टि करो। "**शिशुमतीः**" हम लोग आपकी कृपा से उत्तम उत्तम शिशु (सन्तानादि) को "**अपीत्य**" प्राप्त होके आपको ही भजें "**आ सर्वतो नः शकुने**" हे "**शकुने**" सर्वसामर्थ्यवान् ईश्वर! सब ठिकानों से हमारे लिए "**भद्रम्**" कल्याण को "**आ वद**" अच्छे प्रकार कहो अर्थात् कल्याण की ही आज्ञा और कथन करो, जिससे अकल्याण की बात भी कभी हम न सुनें। "**विश्वतो नः शकुने**" हे सबको सुख देने वाले ईश्वर! सब जगत् के लिए "**पुण्यम्**" धर्मात्मक कर्म करने को "**आवद**" उपदेश कर, जिस से कोई मनुष्य अधर्म करने की इच्छा भी न करै और सब ठिकानों में सत्यधर्म की प्रवृत्ति हो॥५२॥

प्रार्थना विषय

आवदँस्त्वं शकुने भद्रमा वद तूष्णीमासीनः सुमतिं चिकिद्धि नः। यदुत्पतन् वदसि कर्करिर्यथा बृहद्वदेव विदथे सुवीराः॥५३॥ **२।८।१२।३॥**

व्याख्यान—"**आवदंस्त्वं शकुने**" हे शकुने जगदीश्वर! आप "**भद्रम्**" कल्याण का भी कल्याण अर्थात् व्यावहारिक सुख के भी ऊपर मोक्ष सुख का निरन्तर उपदेश सब जीवों को कीजिये। "**तूष्णीमासीनः**" हे अन्तर्यामिन्! हमारे हृदय में सदा स्थिर हो, मौन से ही "**सुमतिम्**" सर्वोत्तमज्ञान देवो। "**चिकिद्धिं नः**" कृपा से हमको अपने रहने के लिए घर ही बनाओ और आप की परमविद्या को हम प्राप्त हों। "**यदुत्पतन्**" उत्तम व्यवहार में पहुँचाते हुए आप का "**यथा**" जिस प्रकार से "**कर्करिर्वदसि**" कर्त्तव्य कर्म, धर्म को ही अत्यन्त पुरुषार्थ से करो, अकर्त्तव्य दुष्ट कर्म मत करो, मत करो, ऐसा उपदेश है, कि पुरुषार्थ अर्थात् यथायोग्य उद्यम को कभी कोई मत छोड़ो, जैसे "**बृहद्वदेम विदथे**" विज्ञानादि यज्ञ वा धर्मयुक्त युद्धों में "**सुवीराः**" अत्यन्त सूरवीर हो के बृहत् (सबसे बड़े) आप जो परब्रह्म उन "**वदेम**" आप की स्तुति, आप का उपदेश, आप की प्रार्थना और उपासना तथा आप का यह बड़ा अखण्ड साम्राज्य और सब मनुष्यों का हित सर्वदा कहें, सुनें और आपके अनुग्रह से परमानन्द को भोगें॥५३॥

ओम् महाराजाधिराजाय परमात्मने नमो नमः

इति श्रीमत्परमहंसपरिब्राजकाचार्याणां महाविदुषां श्रीयुतविराजानन्द–सरस्वतीस्वामिनां शिष्येण दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचित आर्याभिविनये प्रथमः प्रकाशः पूर्त्तिमागमत्।

समाप्तोऽयं प्रथमः प्रकाशः॥

ओ३म्

तत्सत्परमात्मने नमः

अथ द्वितीय-प्रकाशः

ओ३म् सह नाववतु सह नौ भुनक्तु। सह वीर्य्यं करवावहै। तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै॥ ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥ १॥

—तैत्ति० ब्र० प्रपा० १०। प्रथमा० १॥

व्याख्यान—हे सहनशीलेश्वर! आप, और हम लोग परस्पर प्रसन्नता से रक्षक हों। आप की कृपा से हम लोग सदैव आप की ही स्तुति प्रार्थना और उपासना करें तथा आप को ही पिता, माता, बन्धु, राजा, स्वामी, सहायक, सुखद, सुहृद्, परमगुर्वादि जानें। क्षणमात्र भी आपको भूल कर न रहें। आपके तुल्य वा अधिक किसी को भी न जानें। आपके अनुग्रह से हम सब लोग परस्पर प्रीतिमान्, रक्षक, सहायक, परम पुरुषार्थी हों। एक दूसरे का दुःख न देख सकें। स्वदेशस्थादि मनुष्यों को अत्यन्त परस्पर निर्वैर प्रीतिमान्, पाखण्ड रहित करें। ''**सह नौ भुनक्तु**'' तथा आप और हम लोग परस्पर परमानन्द का भोग करें हम लोग परस्पर हित से आनन्द भोगैं, कि आप हमको अपने अनन्त परमानन्द के भागी करैं, उस आनन्द से हम लोगों को क्षण मात्र भी अलग न रक्खें।

''**सह वीर्य्यं करवावहै**'' आप के सहाय से परम वीर्य्य जो सत्यविद्यादि उस को परस्पर परम पुरुषार्थ से प्राप्त करें।

"**तेजस्वि नावधीतमस्तु**" हे अनन्त विद्यामय भगवन्! आपकी कृपादृष्टि से हम लोगों का पठन पाठन परमविद्यायुक्त हो और संसार में सब से अधिक प्रकाशित हों और अन्योन्य प्रीति से परम वीर्य पराक्रम से निष्कण्टक चक्रवर्ती राज्य भोगें। हममें सब नीतिमान् सज्जन पुरुष हों, और आप हम लोगों पर अत्यन्त कृपा करें कि हम लोग नाना पाखण्ड, असत्य, वेदविरुद्ध मतों को शीघ्र छोड़ के एक सत्यसनातनमतस्थ हों, जिससे सब विद्वेष के मूल जो पाखण्ड मत, वे सब सद्यः प्रलय को प्राप्त हों।

"**मा विद्विषामहै**" और हे जगदीश्वर! आप के सामर्थ्य से हम लोगों में परस्पर विद्वेष, विरोध अर्थात् अप्रीति न रहै तथा हम लोग कभी परस्पर विद्वेष, विरोध न करें, किन्तु सब (हम लोग) तन, मन, धन, विद्या, इनको परस्पर सबके सुखोपकार में परम प्रीति से लगावें।

"**ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः**" हे भगवन्! तीन प्रकार के सन्ताप जगत् में हैं—एक आध्यात्मिक (शारीरिक) जो ज्वरादि पीड़ा होने से होता है, दूसरा आधिभौतिक ताप जो शत्रु, सर्प, व्याघ्र चौरादिकों से सन्ताप होता है, और तीसरा जो मन, इन्द्रिय, अग्नि, वायु, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, अतिशीत, अत्युष्णता इत्यादि से होता है सो आधिदैविक ताप है। हे कृपासागर! आप इन तीनों तापों की शीघ्र निवृत्ति करें, जिससे हम लोग अत्यानन्द में और आपकी अखण्ड उपासना में सदा रहैं।

हे विश्वगुरो! मुझको असत् (मिथ्या) और अनित्य पदार्थ तथा असत् काम से छुड़ा के, सत्य तथा नित्य पदार्थ और श्रेष्ठ व्यवहार में स्थिर कर। हे जगन्मङ्गलमय! (सर्वदुःखेभ्यो

मोचयित्वा सर्वसुखानि प्रापय) सब दुःखों से मुझको छुड़ा के, सब सुखों को प्राप्त कर (हे प्रजापते सुप्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन परमैश्वर्येण संयोजय)–हे प्रजापते! मुझको अच्छी प्रजा पुत्रादि, हस्त्यश्वगवादि, उत्तम पशु, सर्वोत्कृष्ट विद्या और चक्रवर्त्ती राज्यादि परमैश्वर्य जो स्थिर परमसुखकारक उसको शीघ्र प्राप्त कर। हे परमवैद्य! (सर्वरोगात् पृथक्कृत्य नैरोग्यं देहि) सर्वथा मुझको सब रोगों से छुड़ा के परम नैरोग्य दे। हे महाराजाधिराज! [(मनसा वाचा कर्मणा अज्ञानेन प्रमादेन वा यद्यत्पापं कृतं मया, तत्तत्सर्वं कृपया क्षमस्व ज्ञानपूर्वकपापकरणान्निवर्तयतु माम्) मन से, वाणी से और कर्म से, अज्ञान वा प्रमाद से जो पाप किया हो, किंवा करने का हो, उस उस मेरे पाप को क्षमा कर और ज्ञानपूर्वक पाप करने से भी मुझको रोक दे], जिससे मैं शुद्ध हो के आप की सेवा में स्थिर होऊँ। (हे न्यायाधीश! कुकामकुलोभ कुमोहभयशोकालस्येर्ष्याद्वेषप्रमादविषयतृष्णानैष्ठुर्याभिमानदुष्टमा वाविद्याभ्यो निवारय, एतेभ्यो विरुद्धेषूत्तमेषु गुणेषु संस्थपाय माम्) हे ईश्वर! कुकाम कुलोभादि पूर्वोक्त दुष्ट दोषों को स्वकृपा से छुड़ा के श्रेष्ठ काम आदि में यथावत् मुझको स्थिर कर। मैं अत्यन्त दीन हो के यही मांगता हूँ कि मैं आप और आपकी आज्ञा से भिन्न पदार्थ में कभी प्रीति न करूँ। हे प्राणपते, प्राणप्रिय, प्राणपितः, प्राणाधार, प्राणजीवन, स्वराज्यप्रद! मेरे प्राणपति आदि आप ही हो, मेरा सहायक आपके सिवाय कोई नहीं। हे राजाधिराज! जैसा सत्य न्याययुक्त अखण्डित आपका राज्य है, वैसा न्यायराज्य हम लोगों का भी आप की ओर से स्थिर हो, आपके राज्य के अधिकारी किङ्कर अपने कृपाकटाक्ष से हमको शीघ्र ही कर। हे न्यायप्रिय!

हमको भी न्यायप्रिय यथावत् कर। हे धर्माधीश हमको धर्म में स्थिर रख। हे करुणामय पिता! जैसे माता और पिता अपने सन्तानों का पालन करते हैं वैसे ही आप हमारा पालन करो।

स्तुति विषय

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविर शुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥ २॥

—यजुर्वेद अध्याय ४०। मं ८॥

व्याख्यान—''**स पर्यगात्**'' वह परमात्मा आकाश के समान सब जगह में परिपूर्ण (व्यापक) है। ''**शुक्रम्**'' सब जगत् का करने वाला वही है। ''**अकायम्**'' और वह कभी शरीर (अवतार) नहीं धारण करता। वह अखण्ड और अनन्त, निर्विकार होने से देह धारण कभी नहीं करता। उससे अधिक कोई पदार्थ नहीं है। इससे ईश्वर का शरीर धारण करना कभी नहीं बन सकता। ''**अव्रणम्**'' वह अखण्डैकरस, अच्छेद्य, अभेद्य, निष्कम्प और अचल है, इससे अंशांशिभाव भी उसमें नहीं है, क्योंकि उसमें छिद्र किसी प्रकार से नहीं हो सकता। ''**अस्नाविरम्**'' नाड़ी आदि का प्रतिबन्ध (निरोध) भी उसका नहीं हो सकता। अतिसूक्ष्म होने से ईश्वर को कोई आवरण नहीं हो सकता। ''**शुद्धम्**'' वह परमात्मा सदैव निर्मल अविद्यादि जन्म, मरण, हर्ष, शोक, क्षुधा, तृषादि दोषोपाधियों से रहित है। शुद्ध की उपासना करने वाला शुद्ध ही होता है, और मलिन का उपासक मलिन ही होता है। ''**अपापविद्धम्**'' परमात्मा कभी अन्याय नहीं करता, क्योंकि

वह सदैव न्यायकारी ही है। "**कविः**" त्रैकाल्यज्ञ, (सर्ववित्) महाविद्वान् जिसकी विद्या का अन्त कोई कभी नहीं ले सकता। "**मनीषी**" सब जीवों के मन (विज्ञान) का साक्षी सबके मन का दमन करने वाला है। "**परिभूः**" सब दिशाओं और सब जगह में परिपूर्ण हो रहा है, सबके ऊपर विराजमान है। "**स्वयम्भूः**" जिसका आदिकारण माता, पिता, उत्पादक, कोई नहीं, किन्तु वही सबका आदिकारणादि है। "**याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः**" उस ईश्वर ने अपनी प्रजा को यथावत् सत्य, सत्यविद्या जो चार वेद उनका सब मनुष्यों के परमहितार्थ उपदेश किया है। उस हमारे दयामय पिता परमेश्वर ने बड़ी कृपा से अविद्यान्धकार का नाशक वेद-विद्यारूप सूर्य्य प्रकाशित किया है। और सबका आदिकारण परमात्मा है—ऐसा अवश्य मानना चाहिये। एवं विद्या पुस्तक का भी आदिकारण ईश्वर को निश्चित मानना चाहिये। विद्या का उपदेश ईश्वर ने अपनी कृपा से किया है। क्योंकि हम लोगों के लिये (उसने) सब पदार्थों का दान किया है, तो विद्या-दान क्यों न करेगा। सर्वोत्कृष्ट विद्या पदार्थ का दान परमात्मा ने अवश्य किया है, तो वेद के विना अन्य कोई पुस्तक संसार में ईश्वरोक्त नहीं है। जैसा पूर्ण विद्यावान् और न्यायकारी ईश्वर है वैसे ही वेद पुस्तक भी है। अन्य कोई पुस्तक ईश्वरकृत, वेद तुल्य वा अधिक नहीं है। अधिक विचार इस विषय का "**सत्यार्थप्रकाश**" मेरे किये ग्रन्थ में देख लेना॥ २॥

स्तुति विषय

दृते दृह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्। मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे॥ ३॥ ३६। १८॥

व्याख्यान—हे अनन्तबल महावीर ईश्वर! ''**दृते**'' हे दुष्टस्वभावनाशक! विदीर्ण कर्म अर्थात् विज्ञानादि शुभ गुणों का नाश कर्म करने वाला मुझ को मत रक्खो (स्थिर मत करो), किन्तु उससे मेरे आत्मादि को उठा के विद्या सत्यधर्मादि शुभ गुणों में सदैव स्वकृपासामर्थ्य ही से स्थित करो! ''**दृह मा**'' हे परमैश्वर्यवन् भगवन्! धर्मार्थकाममोक्षादि तथा विद्या विज्ञानादि दान से अत्यन्त मुझको बढ़ा। ''**मित्रस्येत्यादि०**'' हे सर्वसुहृदीश्वरसर्वान्तर्य्यामिन्! सब भूत प्राणिमात्र मित्र की दृष्टि से यथावत् मुझ को देखैं। सब मेरे मित्र ही हो जायें, कोई मुश से किञ्चिन्मात्र भी वैरदृष्टि न करें। ''**मत्रिस्याहं चेत्यादि**'' हे परमात्मन्! आपकी कृपा से मैं भी निर्वैर हो के सब भूत प्राणी और अप्राणी चराचर जगत् को मित्र की दृष्टि से स्वआत्म स्वप्राणवत् प्रिय जानूँ। अर्थात् ''**मित्रस्य चक्षुषेत्यादि**'' पक्षपात छोड़ के सब जीव देहधारी मात्र अत्यन्त प्रेम से परस्पर वर्तमान करैं। अन्याय से युक्त होके किसी पर कभी हम लोग न वर्त्तें। यह परम धर्म का सब मनुष्यों के लिये परमात्मा ने उपदेश किया है। सबको यही मान्य होने योग्य है॥ ३॥

स्तुति विषय

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः। तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः॥४॥ ३२।१॥

व्याख्यान—जो सब जगत् का कारण एक परमेश्वर है उसी का नाम अग्नि है (''**ब्रह्म ह्यग्निः**'' शतपथे)। सर्वोत्तम ज्ञानस्वरूप, और जानने के योग्य, प्रापणीयस्वरूप और पूज्यतमेत्यादि अग्नि शब्द के अर्थ हैं। ''**आदित्यो वै ब्रह्म, वायुर्वै ब्रह्म, चन्द्रमा वै ब्रह्म, शुक्रं हि ब्रह्म, सर्वजगत्कर्तृ, ब्रह्म, ब्रह्म वै बृहत् आपो वै ब्रह्मेत्यादि** शतपथ तथा ऐतरेय ब्राह्मण के प्रमाण हैं। **तदादित्यः**'' जिसका कभी नाश न हो, और स्वप्रकाशस्वरूप हो, इससे परमात्मा का नाम आदित्य है। ''**तद्वायुः**'' सब जगत् का धारण करने वाला, अनन्त बलवान्, प्राणों से भी जो प्रियस्वरूप है, इससे ईश्वर का नाम वायु है। पूर्वोक्त प्रमाण से ''**तदु चन्द्रमाः**'' जो आनन्दस्वरूप और स्वसेवकों को परमानन्द देने वाला है, इससे पूर्वोक्त प्रकार से चन्द्रमा परमात्मा को जानना। ''**तदेव शुक्रम्**'' वही चेतन स्वरूप ब्रह्म सब जगत् का कर्त्ता है। ''**तद् ब्रह्म**'' सो अनन्त चेतन सबसे बड़ा है और धर्मात्मा स्वभक्तों को अत्यन्त सुख विद्यादि सद्गुणों से बढ़ाने वाला है। ''**ता आपः**'' उसी को सर्वत्र चेतन सवत्र व्याप्त होने से ''**आपः**'' नामक जानना। ''**स प्रजापतिः**'' सो ही सब जगत् का पति (स्वामी) और पालन करने वाला है, अन्य कोई नहीं। उसी को हम लोग इष्टदेव तथा पालक मानें, अन्य को नहीं॥४॥

स्तुति विषय

ऋचं वाचं प्र पद्ये मनो यजुः प्र पद्ये
साम प्राणं प्र पद्ये चक्षुः श्रोत्रं प्र पद्ये।
वागोजः सहौजो मयि प्राणापानौ॥ ५॥ ३६। १॥

व्याख्यान—हे करुणाकर परमात्मन्! आपकी कृपा से मैं ऋग्वेदादिज्ञानयुक्त (श्रवणयुक्त) हो के उसका वक्ता होऊँ तथा यजुर्वेदाभिप्रायार्थसहित सत्यार्थ मननयुक्त मन को प्राप्त होऊँ। ऐसे ही सामवेदार्थनिश्चय निदिध्यासन सहित प्राण को सदैव प्राप्त होऊँ। "**वागोजः**" वाग्बल, वक्तृत्वबल, मनोविज्ञानबल मुझको आप देवैं, अन्तर्यामी की कृपा से मैं यथावत् प्राप्त होऊँ। "**सहौजः**" शरीरबल नैरोग्य-दृढ़त्वादिगुणयुक्त को मैं आप के अनुग्रह से सदैव प्राप्त होऊँ। "**मयि प्राणापानौ**" हे सर्वजगज्जीवनाधार! प्राण (जिससे कि ऊर्ध्व चेष्टा होती है) और अपान (अर्थात् जिससे नीचे की चेष्टा होती है) ये दोनों मेरे शरीर में सब इन्द्रिय, सब धातुओं की शुद्धि करनेवाले तथा नैरोग्य, बल, पुष्टि, सरलगति करनेवाले, स्थिर, आयुवर्धक [और] मर्मरक्षक हों, उनके अनुकूल प्राणादि को प्राप्त हो के आपकी कृपा से हे ईश्वर! सदैव सुखी हो के आपकी आज्ञा और उपासना में तत्पर रहूँ॥ ५॥

स्तुति विषय

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा। यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त॥ ६॥ ३२। १०॥

व्याख्यान—वह परमेश्वर हमारा "**बन्धुः**" दुःखनाशक और सहायक है, तथा "**जनिता**" सब जगत् तथा हम लोगों का भी पालन करने वाला पिता तथा हम लोगों के कामों की सिद्धि का "**विधाता**" पूर्ण कामों की सिद्धि करने वाला वही है। सब जगत् का भी विधाता रचने और धारण करने वाला वही है। सब जगत् का भी विधाता रचने और धारण करने वाला एक परमात्मा ही है अन्य कोई नहीं। "**धामानि वेद भुवनानि विश्वा**" सब धाम अर्थात् अनेक लोकलोकान्तरों को रचके अनन्त सर्वज्ञता से यथार्थ जानता है। वह कौन परमेश्वर है? कि जिससे देव अर्थात् विद्वान् लोग (विद्वा सो हि देवाः। शतपथ ब्रा०) अमृत मरणादि दुःखरहित मोक्षपद में सब दुःखों से छूट के सर्वव्यापी पूर्णानन्दस्वरूप परमात्मा को प्राप्त होके परमानन्द में सदैव रहते हैं। "**तृतीये धामन्**" एक स्थूल जगत् (पृथिव्यादि), दूसरा सूक्ष्म (आदिकारण), तीसरा जो सर्वदोषरहित अनन्तानन्दस्वरूप परब्रह्म उस धाम में "**अध्यैरयन्त**" धर्मात्मा विद्वान् लोग स्वच्छन्द (स्वेच्छा) से वर्तते हैं। सब बाधाओं से छूट के विज्ञानवान् शुद्ध हो के देश काल वस्तु का परिच्छेदरहित सर्वगत "**धामन्**" आधारस्वरूप परमात्मा में सदा रहते हैं, उससे जन्म मरणादि दुःखसागर में कभी नहीं गिरते॥ ६॥

प्रार्थना विषय

यतोयतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु। शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः॥ ७॥ ३६। २२॥

व्याख्यान—हे परमेश्वर, दयालो! जिस जिस देश से

आप "**समीहसे**" सम्यक् चेष्टा करते हो उस उस देश से हमको अभय करो अर्थात् जहाँ जहाँ से हमको भय प्राप्त होने लगे वहाँ वहाँ से र्वथा हम लोगों को अभय (भयरहित) करो तथा प्रजा से हमको सुख करो। हमारी प्रजा सब दिन सुखी रहे, भय देने वाली कभी न हो, तथा पशुओं से भी हमको अभय करो। किञ्च किसी से किसी प्रकार का भय हम लोगों को आप की कृपा से कभी न हो। जिस से हम लोग निर्भय हो के सदैव परमानन्द को भोगें और निरन्तर आपका राज्य तथा आपकी भक्ति करें॥७॥

स्तुति विषय

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था
विद्यतेऽयनाय॥८॥ ३१।१८॥

व्याख्यान—सहस्रशीर्षादि विशेषणोक्त पुरुष सर्वत्र परिपूर्ण (पूर्णत्वात्पुरिशयनाद्वा पुरुष इति निरुक्तोक्तेः) है। उस पुरुष को मैं जानता हूँ अर्थात् सब मनुष्यों को उचित है कि उस परमात्मा को अवश्य जानें। उसको कभी न भूलें, अन्य किसी को ईश्वर न जानें। वह कैसा है? कि—"**महान्तम्**" बड़ों से भी बड़ा, उससे बड़ा वा तुल्य कोई नहीं है। "**आदित्यवर्णम्**" आदित्यादि का रचक और प्रकाशक वही एक परमात्मा है, तथा वह सदा स्वप्रकाशस्वरूप ही है। किंच "**तमसः परस्तात्**" तम जो अन्धकार अविद्यादि दोष उससे रहित ही है, तथा स्वभक्त, धर्मात्मा, सत्यप्रेमी जनों को भी अविद्यादि दोषरहित सद्यः करने वाला वही परमात्मा है।

विद्वानों का ऐसा निश्चय है कि परब्रह्म के ज्ञान और उसकी कृपा के विना कोई जीव कभी सुखी नहीं होता। "**तमेव विदत्वेत्यादि**" उस परमात्मा को जान के ही जीव मृत्यु को उल्लंघन कर सकता है, अन्यथा नहीं। क्योंकि "**नाओऽन्यः पन्था विद्यतेऽयनाय**" विना परमेश्वर की भक्ति और उसके ज्ञान के मुक्ति का मार्ग कोई नहीं है, ऐसी परमात्मा की दृढ़ आज्ञा है। सब मनुष्यों को इसमें ही वर्त्तना चाहिये और सब पाखण्ड और जंजाल अवश्य छोड़ देना चाहिये॥ ८॥

प्रार्थना विषय

तेजोऽसि तेजो मयिं धेहि वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि बलमसि बलं मयि धेह्योजोऽस्योजो मयि धेहि मन्युरसि मन्युं मयि धेहि सहोऽसि सहो मयि धेहि॥ ९॥

१९। ९॥

व्याख्यान—हे स्वप्रकाश! अनन्ततेज! आप अविद्यान्धकार से रहित हो, किंच सत्यविज्ञान तेजःस्वरूप हो! आप कृपादृष्टि से मुझ में वही तेज धारण करो, जिससे मैं निस्तेज, दीन और भीरु कहीं कभी न होऊँ। हे अनन्तवीर्य परमात्मन्! आप वीर्यस्वरूप हो, आप सर्वोत्तम बल स्थिर मुझ में भी रक्खें। हे अनन्तपराक्रम! आप ओजः (पराक्रमस्वरूप) हो, सो मुझमें भी उस पराक्रम को सदैव धारण करो। "**हे दुष्टानामुपरि क्रोधकृत्!**" मुझ में भी दुष्टों पर क्रोध धारण कराओ। हे अनन्तसहनस्वरूप! मुझ में भी आप सहनसामर्थ्य धारण करो अर्थात् शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्मा इनके तेजादि गुण कभी मुझ में से दूर न हों, जिससे

मैं आपकी भक्ति का स्थिर अनुष्ठान करूँ और आपके अनुग्रह से संसार में भी सदा सुखी रहूँ॥ ९॥

स्तुति विषय

परीत्य भूतानि परीत्य लोकान् परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च। उपस्थाय प्रथमजामृतस्यात्मनात्मानमभि सं विवेश॥ १०॥ ३२। ११॥

व्याख्यान—सब भूत, आकाश और प्रकृति से ले के पृथिवी पर्यन्त सब संसार में वह परमेश्वर व्याप्त हो के पूर्ण भर रहा है तथा सब लोक, सब पूर्वादि दिशा और ऐशान्यादि उपदिशा, ऊपर, नीचे अर्थात् एक कण भी उसके बिना खाली नहीं। "**प्रथमजाम्**" प्रथमोत्पन्न जीव सब संसार को ही समझना। सो जीव आदि अपने आत्मा से अत्यन्त सत्याचरण, विद्या, श्रद्धा, भक्ति से "**ऋतस्य**" यथार्थ सत्यस्वरूप परमात्मा को "**उपस्थाय**" यथावत् जान के उपस्थित (निकट प्राप्त) "**अभिसंविवेश**" अभिमुख हो के, उसमें प्रविष्ट अर्थात् परमानन्दस्वरूप परमात्मा में प्रवेश करके सब दुःखों से छूट न सदैव उसी परमानन्द में रहता है॥ १०॥

प्रार्थना विषय

भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः। भग प्र नो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्त स्याम॥ ११॥ ३४। ३६॥

व्याख्यान—हे भगवन्! परमैश्वर्यवन्! भग=ऐश्वर्य के

दाता, संसार वा परमार्थ में आप ही हो। तथा "**भग प्रणेतः**" आपके ही स्वाधीन सकल ऐश्वर्य है, अन्य किसी के आधीन नहीं। आप जिसको चाहो उसको ऐश्वर्य देओ। सो आप कृपा से हम लोगों का दारिद्र्य छेदन करके हमको परमैश्वर्य वाले करें, क्योंकि ऐश्वर्य के प्रेरक आप ही हो। हे "**सत्यराधः**" भगवन् सत्यैश्वर्य की सिद्धि करनेवाले आप ही हो, सो आप नित्य ऐश्वर्य हमको दीजिये। [तथा] जो मोक्ष कहाता है उस सत्य ऐश्वर्य का दाता आपसे भिन्न कोई भी नहीं है। हे सत्यभग! पूर्ण ऐश्वर्य, सर्वोत्तम बुद्धि हम को आप दीजिये, जिस से हम लोग आप, आपके गुण और आपकी आज्ञा का अनुष्ठान, ज्ञान, इनको यथावत् प्राप्त हों। सो हमको सत्यबुद्धि, सत्यकर्म और सत्यगुणों को "**उदव**" (उद्गमय प्रापय) प्राप्त कर, जिससे हम लोग सूक्ष्म से भी सूक्ष्म पदार्थों को यथावत् जानें। "**भग प्र नो जनय**" हे सर्वैश्वर्योत्पादक! हमारे लिये "**भग**" ऐश्वर्य को अच्छी प्रकार से उत्पन्न कर। सर्वोत्तम गाय, घोड़े और मनुष्य इनसे सहित अनुत्तम (अत्युत्तम) ऐश्वर्य हमको सदा के लिये दीजिये। हे सर्वशक्तिमन्! आपकी कृपाकटाक्ष से सब दिन हम लोग उत्तम उत्तम पुरुष, स्त्री और सन्तान, भृत्य वाले हों. आपसे हमारी अधिक यही प्रार्थना है कि कोई मनुष्य हममें दुष्ट और मूर्ख न रहे, तथा न पैदा हो, जिससे हम लोगों की सर्वत्र सत्कीर्त्ति हो, और निन्दा कभी न हो॥ ११॥

स्तुति विषय

तदेजति तन्नैजति तद् दूरे तद्वन्तिके। तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः॥ १२॥ ४०।५॥

व्याख्यान—"**तद् (ब्रह्म) एजति**" वह परमात्मा सब जगत् को यथायोग्य अपनी-अपनी चाल पर चला रहा है, सो अविद्वान् लोग ईश्वर में भी आरोप करते हैं कि वह भी चलता होगा, परन्तु वह सब में पूर्ण है, कभी चलायमान नहीं होता। अत एव "**तन्नैजति**" (यह प्रमाण है) स्वतः वह परमात्मा कभी नहीं चलता, एकरस निश्चल हो के भरा है। विद्वान् लोग इसी रीति से ब्रह्म को जानते हैं। "**तद् दूरे**" अधर्मात्मा, अविद्वान्, विचारशून्य, अजितेन्द्रिय, ईश्वरभक्ति-रहित इत्यादि दोषयुक्त मनुष्यों से वह ईश्वर बहुत दूर है अथात् वे कोटि-कोटि वर्ष तक उसको नहीं प्राप्त होते। इससे वे तब तक जन्म-मरणादि दुःखसागर में इधर उधर घूमते फिरते हैं, कि जब तक उसको नहीं जानते "**तद्वन्तिके**" सत्यवादी, सत्यकारी, सत्यमानी, जितेन्द्रिय, सर्वजनोपकारक विद्वान् विचारशील पुरुषों के "**अन्तिके**" अत्यन्त निकट है। किंच वह सब के आत्माओं के बीच में अन्तर्यामी व्यापक हो के सर्वत्र पूर्ण भर रहा है। सो आत्मा का भी आत्मा है, क्योंकि परमेश्वर सब जगत् के भीतर और बाहर तथा मध्य अर्थात् एक तिलमात्र भी उसके बिना खाली नहीं है। वह अखण्डैकरस सब में व्याप रहा है उसी को जानने से ही सुख और मुक्ति होती है, अन्यथा नहीं॥ १२॥

प्रार्थना विषय

आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पतां श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां वाग्यज्ञेन कल्पतां मनो यज्ञेन कल्पतामात्मा यज्ञेन कल्पतां ब्रह्मा यज्ञेन कल्पतां ज्योतिर्यज्ञेन कल्पता स्वर्यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्। स्तोमश्च यजुश्च ऋक् च साम च बृहच्च रथन्तरं च। स्वर्देवा अगन्मामृता अभूम प्रजापतेः प्रजा अभूम वेट् स्वाहा॥ १३॥ १८। २९॥

व्याख्यान—(यज्ञो वै विष्णुः यज्ञो वै ब्रह्म इत्याद्यैतरेयशतपथब्राह्मणश्रुतेः) यज्ञ यजनीय जो सब मनुष्यों का पूज्य इष्टदेव परमेश्वर उसके हेतु (उसके अर्थ तथा उसके संग) अतिश्रद्धा से (यज्ञ जो परमात्मा उसके लिये) सब मनुष्य सर्वस्व समर्पण यथावत् करैं, यही इस मन्त्र में उपदेश और प्रार्थना है कि हे सर्वशक्तिमन् ईश्वर! जो यह आपकी आज्ञा है कि सब लोग सब पदार्थ मेरे अर्पण करें, इस कारण हम लोग "**आयुः**" उमर, प्राण, चक्षु (आंख), कान, वाणी, मन, आत्मा–जीव "**ब्रह्मा**" तथा वेदविद्या और विद्वान् ज्योति (सूर्यादि लोक तथा अग्न्यादि पदार्थ) तथा स्वर्ग (सुखसाधन), पृष्ठ (पृथिव्यादि सब लोक आधार) तथा पुरुषार्थ, यज्ञ (जो जो अच्छा काम हम लोग करते हैं) स्तोम स्तुति, यजुर्वेद, ऋग्वेद, सामवेद चकार से अथर्ववेद, बृहद्रथन्त महारथन्तर साम इत्यादि सब पदार्थ आपके समर्पण करते हैं। हम लोग तो केवल आपके ही शरण हैं। जैसे आपकी इच्छा हो, वैसा हमारे लिये आप कीजिए, परन्तु हम लोग आपके सन्तान आपकी कृपा से "**स्वरगन्म**" उत्तम सुख को प्राप्त हों। जब तक जीवें, तब तक सदा चक्रवर्ती राज्यादि भोग से सुखी

रहैं, और भरणानन्तर भी हम सुखी ही रहें। हे महादेवामृत! हम देव (परम विद्वान्) हों तथा अमृत मोक्ष जो आपकी प्राप्ति उसको प्राप्त हो के जन्म मरण रहित अमृतस्वरूप सदैव रहें। "**वेट् स्वाहा**" आपकी आज्ञा पालन और आप की प्राप्ति हो जिस से, उस क्रिया में सदा तत्पर रहें। तथा जो अन्तर्यामी आप हृदय में आज्ञा करो अर्थात् जैसा हमारे हृदय में ज्ञान हो वैसा ही सदा भाषण करें, इससे विपरीत कभी नहीं। हे कृपानिधे! हम लोगों का योगक्षेम (सब निर्वाह) आपही सदा करो। आप के सहाय से सर्वत्र हमको विजय और सुख मिले॥१३॥

स्तुति विषय

यस्मान जातः परो अन्यो अस्ति य आविवेश भुवनानि विश्वा। प्रजापतिः प्रजया सरराणस्त्रीणिज्योतीषि सचते स षोडशी॥ १४॥

३२। १६॥ ८। ३६॥

व्याख्यान—जिससे बड़ा, तुल्य वा श्रेष्ठ न हुआ, न है और न कोई कभी होगा, उसको परमात्मा कहना। जो "**विश्वा भुवनानि**" सब भुवन (लोक), सब पदार्थों के निवास स्थान, असंख्यात लोकों को "**आविवेश**" प्रविष्ट हो के पूर्ण हो रहा है, वही ईश्वर प्रजा का पति (स्वामी) है। सब प्रजा को रमा रहा और सब प्रजा में रम रहा है। "**त्रीणीत्यादि**" तीन ज्योति अग्नि, वायु और सूर्य इनको जिसने रचा है, सब जगत् के व्यवहार और पदार्थ-विद्या की उत्पत्ति के लिए इन तीनों को मुख्य समझना। "**स षोडशी**" सोलह कला जिसने

उत्पन्न की हैं इससे सोलह कलावान् ईश्वर कहाता है। वे सोलह कला ये हैं—ईक्षण (विचार) १. प्राण २. श्रद्धा ३. आकाश ४. वायु ५. अग्नि ६. जल ७. पृथिवी ८. इन्द्रिय ९. मन १०. अन्न ११. वीर्य (पराक्रम) १२. तप (धर्मानुष्ठान) १३. मन्त्र (वेद-विद्या) १४. कर्म (चेष्टा) १५. लोक और लोकों में नाम १६. इतनी कलाओं के बीच में सब जगत् है और परमेश्वर में अनन्त कला हैं। उसकी उपासना छोड़ के दूसरे की उपासना करता है वह सुख को प्राप्त कभी नहीं होता, किन्तु सदा दुःख में ही पड़ा रहता है॥ १४॥

स्तुति विषय

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव।
सचस्वा नः स्वस्तये॥ १५॥ ३। २४॥

व्याख्यान—(ब्रह्म ह्यग्निः; इत्यादिशतपथादिप्रामाण्याद् ब्रह्मैवात्राग्निर्ग्राह्यः) हे विज्ञानस्वरूपेश्वराग्ने! आप हमारे लिए "**सूपियनः**" सुख से प्राप्त, श्रेष्ठोपाय के प्रापक, अनुत्तम स्थान के दाता कृपा से सर्वदा हो तथा रक्षक भी हमारे आप ही हो। हे स्वस्तिद परमात्मन्! सब दुःखों का नाश करके हमारे लिए सुख का वर्तमान सदैव कराओ, जिससे हमारा वर्त्तमान श्रेष्ठ ही हो। "**स नः पितवे सूनवे**" जैसे करुणामय पिता स्वपुत्र को सुखी ही रखता है, वैसे आप हमको सदा सुखी रक्खो, क्योंकि जो हम लोग बुरे होंगे तो उसकी शोभा आपको नहीं होना, किञ्च सन्तानों को सुधारने से ही पिता की बड़ाई होती है, अन्यथा नहीं॥ १५॥

स्तुति विषय

विभूरसि प्रवाहणो वह्निरसि हव्यवाहनः। श्वात्रोऽसि प्रचेतास्तुथोऽसि विश्ववेदाः॥ १६॥ ५। ३१॥

व्याख्यान—हे व्यापकेश्वर! आप विभु हो, सर्वत्र प्रकाशित वैभव ऐश्वर्ययुक्त आप ही हो किन्तु और कोई नहीं। विभु हो के सब जगत् के प्रवाहण (स्वस्वनियमपूर्वक चलाने वाले) तथा सबके निर्वाहकारक भी आप हो। हे स्वप्रकाशक सर्वरसवाहकेश्वर आप वह्नि हैं। सब हव्य उत्कृष्ट रसों के भेदक आकर्षक तथा यथावत् स्थापक आप ही हो। हे आत्मन्! आप "**श्वात्रः**" शीघ्र व्यापनशील हो। तथा प्रकृष्ट ज्ञानस्वरूप, प्रकृष्ट ज्ञान के देनेवाले हो। हे सर्ववित् आप "**तुथः**" और "**विश्ववेदाः**" हो, "**तुथो वै ब्रह्मः**" (यह शतपथ की श्रुति है) सब जगत् में विद्यमान, प्राप्त और लाभ कराने वाले हो॥ १६॥

प्रार्थना विषय

उशिगसि कविरङ्घारिरसि बम्भारिरवस्यूरसि दुवस्वाञ्छुन्ध्यूरसि मार्जालीयः सम्राडसि कृशानुः परिषद्योऽसि पवमानो नभोऽसि प्रतक्वा मृष्टोऽसि हव्यसूदन ऋतधामासि स्वर्ज्योतिः॥ १७॥ ५। ३२॥

व्याख्यान—हे सर्वप्रिय! आप "**उशिक्**" कमनीयस्वरूप अर्थात् सब लोग जिसको चाहते हैं, क्योंकि आप "**कविः**" पूर्ण विद्वान् हो, तथा आप "**अङ्घारिः**" हो अर्थात् स्वभक्तों का जो अघ (पाप) उसके अरि (शत्रु) हो, अर्थात् सर्वपापनाशक हो, तथा "**बम्भारिः**" स्वभक्तों और सर्व जगत् के पालन तथा धारण

करने वाले हो। "**अवस्यूरसि दुवस्वान्**" अन्नादि पदार्थ स्वभक्त धर्मात्माओं को देने की इच्छा सदा करते हो तथा परिचयणीय (विद्वानों से परिचरित) सेबनीयतम हो।"**शुन्ध्यूरसि, मार्ज्जालीयः**"शुद्धस्वरूप और सब जगत् के शोधक तथा पापों को मार्जन (निवारण) करने वाले आप ही हो अन्य कोई नहीं।"**सम्राडसि कृशानुः**"सब राजाओं के महाराज तथा कृश दीन जनों के प्राण के सुखदाता आप ही हो। "**परिषद्योऽसि पवमानः**" हे न्यायकारिन्! पवित्र सभास्वरूप, सभा के आज्ञापक, सभ्य, सभापति, सभाप्रिय, सभारक्षक आप ही हो। तथा पवत्रिस्वरूप पवित्रकारक, सभा से ही सुखदायक, पवित्र, प्रिय आप ही हो। "**नभोऽसि प्रतक्वा**" हे निर्विकार! आकाशवत् आप क्षोभरहित, अतिसूक्ष्म होने से आपका नाम "**नभ**" है, तथा "**प्रतक्वा**" सबके ज्ञाता, सत्यासत्यकारी जनों के कर्मों की साक्ष्य रखने वाले कि जिसने जैसा पाप व पुण्य किया हो उसको वैसा मिले, अन्य का पुण्य वा पाप अन्य को कभी न मिले। "**मृष्टोसि हव्यसूदनः**" मृष्ट शुद्ध स्वरूप, सब पापों के मार्जक शोधक तथा "**हव्यसूदनः**" मिष्ट, सुगन्ध, रोगनाशक, पुष्टिकारक, इन द्रव्यों से वायु वृष्टि की शुद्धि करने, कराने वाले हो, अत एव सब द्रव्यों के विभागकर्त्ता आप ही हो, इससे आपका नाम "**हव्यसूदन**" है। "**ऋतधामासि स्वर्ज्योतिः**" हे भगवन्! आपका ही धाम, स्थान सर्वगत सत्य और यथार्थ (सत्य) व्यवहार में ही आप निवास करते हो, मिथ्या में नहीं। "**स्वः**" आप सुखस्वरूप और सुखकारक हो तथा "**ज्योति**" स्वप्रकाश और सब के प्रकाशक आप ही हो॥ १७॥

स्तुति विषय

समुद्रोऽसि विश्वव्यचा अजोऽस्येकपादहिरसि बुध्न्यो वागस्यैन्द्रमसि सदोऽस्यृतस्य द्वारौ मा मा सनताप्तमध्वनामध्वपते प्र मा तिर स्वस्ति मेऽस्मिन् पथि देवयाने भूयात्॥ १८॥　　　　५। ३३॥

व्याख्यान—"**समुद्रोऽसि विश्वव्यचाः**" हे द्रवणीयस्वरूप! सब भूतमात्र आप ही में द्रवें हैं, क्योंकि कार्य कारण में ही मिले हैं। आप सबके कारण हो तथा (व्याज) सहज से सब जगत् को विस्तृत किया है। इससे आप "**विश्वव्यचाः**" हैं। "**अजोऽस्येकपात्**" आपका जन्म कभी नहीं होता और यह सब जगत् आपके किञ्चिन्मात्र एक देश में है, आप अनन्त हो। "**अहिरसि बुध्न्यः**" आपकी हीनता कभी नहीं होती तथा सब जगत् के मूलकारण और अन्तरिक्ष में भी सदा आप ही पूर्ण रहते हो। "**वागस्यैन्द्रमसि सदोऽसि**" सब शास्त्र के उपदेशक अनन्त विद्यास्वरूप होने से आप "**वाक्**" हो, परमैश्वर्यस्वरूप सब विद्वानों में अत्यन्त शोभायमान होने से आप "**ऐन्द्र**" हो। सब संसार आप में ठहर रहा है इससे आप "**सदः**" (सभास्वरूप) हो। "**ऋतस्य द्वारौ मा मा सन्ताप्तम्**" सत्य–विद्या और धर्म ये दोनों मोक्षस्वरूप आप की प्राप्ति के द्वार हैं, उनको सन्तापयुक्त हम लोगों के लिए कभी मत रक्खो, किन्तु सुखस्वरूप ही खुले रक्खो, जिससे हम लोग सहज से आपको प्राप्त हों। "**अध्वनामित्यादि**" हे अध्वपते! परमार्थ और व्यवहार मार्गों में मुझको कहीं क्लेश मत होने दे, किन्तु उन मार्गों में मुझको स्वस्ति (आनन्द) ही आपकी कृपा से रहै, किसी प्रकार का दुःख हमको न रहै॥ १८॥

स्तुति विषय

देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि मनुष्यकृतस्यैनसोऽवयजनमसि पितृकृतस्यैनसोऽवयजनमस्यात्मकृतस्यैनसोऽवयजनमस्येनसएनसोऽवयजनमसि। यच्चाहमेनो विद्वांश्चकार यच्चाविद्वांस्तस्य सर्वस्यैनसोऽवयजनमसि॥ १९ ॥ ८। १३॥

व्याख्यान—हे सर्वपापप्रणाशक! "**देवकृत०**" इन्द्रिय विद्वान् और दिव्यगुणयुक्त जनके किये पापों के नाशक आप एक ही हो, अन्य कोई नहीं। एवं मनुष्य (मध्यस्थ जन), पितृ (परमविद्यायुक्त जन) और "**आत्मकृत०**" जीव के पापों तथा "**एनसएनसः**" पापों से भी पापों से आप ही "**अवयजन**" हो अर्थात् सर्वपाप रहित हो, और हम सब मनुष्यों के भी पाप दूर करने वाले एक आप ही दयामय पिता हो। हे महानन्तविद्य! जो जो मैंने विद्वान् वा अविद्वान् हो के पाप किया हो, उन सब पापों का छुड़ाने वाला आप के विना कोई भी इस संसार में हमारा शरण नहीं है, इससे हमारे अविद्यादि सब पाप छुड़ा के शीघ्र हमको शुद्ध करो॥ १९ ॥

स्तुति विषय

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ २० ॥ १३। ४॥

व्याख्यान—जब सृष्टि नहीं हुई थी तब एक अद्वितीय हिरण्यगर्भ (जो सूर्य्यादि तेजस्वी पदार्थों का गर्भ नाम

उत्पत्ति–स्थान उत्पादक है,) सो ही प्रथम था। वह सब जगत् का सनातन प्रादुर्भूत प्रसिद्ध पति है। वही परमात्मा पृथिवी से ले के प्रकृतिपर्यन्त जगत् को रच के धारण करता है। "**कस्मै**" (प्रजापतये, कः प्रजापतिः, प्रजापतिर्वै कः तस्मै देवाय। शतपथे) प्रजापति जो परमात्मा उसकी पूजा आत्मादि पदार्थों के समर्पण से यथावत् करैं, उससे भिन्न की उपासना लेशमात्र भी हम लोग न कर। जो परमात्मा को छोड़ के वा उसके स्थान में दूसरे की पूजा करता है, उसकी और उस देश भर की दुर्दशा अत्यन्त होती है, यह बात प्रसिद्ध है, इससे चेतो। मनुष्यो! जो तुमको सुख की इच्छा हो तो एक निराकार परमात्मा की यथावत् भक्ति करो अन्यथा तुमको कभी सुख न होगा॥ २०॥

प्रार्थना विषय

इन्द्रो विश्वस्य राजति। शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे॥ २१॥ ३६। ८॥

व्याख्यान— हे इन्द्र! आप परमैश्वर्य–युक्त सब संसार के राजा हो, सर्वप्रकाशक हो। हे रक्षक! आप कृपा से हम लोगों के "**द्विपदे**" जो पुत्रादि, उनके लिये परमसुखदाय हो, तथा "**चतुष्पदे**" हस्ती, अश्व और गवादि पशुओं के लिये भी परमसुखकारक हो। जिस से हम लोगों को सदा आनन्द ही रहै॥ २१॥

स्तुति विषय

शं नो वातः पवता शं नस्तपतु सूर्यः। शं नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्यो अभि वर्षतु॥ २२॥ ३६। १०॥

व्याख्यान—हे सर्वनियन्तः हमारे लिए सुखकारक, सुगन्ध, शीतल और मन्द मन्द वायु सदैव चले। एवं सूर्य भी सुखकारक ही तपे। तथा मेघ भी सुख का शुब्द लिए अर्थात् गर्जनपूर्वक सदैव काल काल में सुखकारक वर्षे। जिससे आपके कृपापात्र हम लोग सुखानन्द ही में सदा रहैं॥ २२॥

प्रार्थना विषय

अहानि शं भवन्तु नः श रात्रीः प्रति धीयताम्। शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या। शं न इन्द्रापूषणा वाजसातो शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः॥ २३॥ ३६। ११॥

व्याख्यान—हे क्षणादिकालपते! सब दिवस आपके नियम से सुखरूप ही हमको हों। हमारे लिये सर्व रात्रि भी आनन्द से बीतें। हे भगवन्! दिन और रात्रियों को सुखकारक ही आप धारण करो, जिससे सब समय में हम लोग सुखी ही रहैं। हे सर्वस्वामिन्! "**इन्द्राग्नी**" सूर्य तथा अग्नि ये दोनों हमको आपके अनुग्रह से और नाना विध रक्षाओं से सुखकारक हों। "**इन्द्रावरुणा रातहव्या**" हे प्राणाधार! होम से शुद्धिगुणयुक्त हुए आपकी प्रेरणा से वायु और चन्द्र हम लोगों के लिए सुखरूप ही सदा हों। "**इन्द्रापूषणा वाजसातौ**" हे प्राणपते! आपकी रक्षा से पूर्ण आयु और बलयुक्त प्राण वाले हम लोग अपने अत्यन्त पुरुषार्थयुक्त युद्ध में स्थिर रहैं, जिससे शत्रुओं के सम्मुख हम निर्बल कभी न हों। "**इन्द्रासोमा सुविताय शंयोः**" (प्राणापानौ वा इन्द्राग्नी

इत्यादि शतपथ ब्राह्मणादि के प्रमाण देख लेना) हे महाराज! आप के प्रबन्ध से राजा और प्रजा परस्पर विद्यादि सत्यगुणयुक्त होके अपने ऐश्वर्य का उत्पादन करैं। तथा आपकी कृपा से परस्पर प्रीतियुक्त हो [कर] अत्यन्त सुख लाभों को प्राप्त हों। आप हम पुत्र लोगों को सुखी देख के अत्यन्त प्रसन्न हों और हम भी प्रसन्नता से आप और जो आपकी सत्य आज्ञा उसमें ही तत्पर हों॥ २३॥

स्तुति विषय

प्र तद्वोचेदमृतं नु विद्वान् गन्धर्वो धाम विभृतं गुहा सत्। त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितुः पिताऽसत्॥ २४॥ ३२। ९॥

व्याख्यान—हे वेदादि शास्त्र और विद्वानों के पतिपादन करने योग्य! जो अमृत (मरणादि दोष रहित) मुक्तों का धाम (निवासस्थान) सर्वगत सब का धारण और पोषण करने वाला, सब की बुद्धियों का साक्षी ब्रह्म है, उस आपका उपदेश तथा धारण जो विद्वान् जानता है, वह गन्धर्व कहाता है (गच्छतीति गं=ब्रह्म, तद्धरतीति स गन्र्धवः) सर्वगत ब्रह्म को जो धारण करने वाला, उसका नाम गन्धर्व है। तथा परमात्मा के तीन पद हैं—जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करने का सामर्थ्य [इन को] को तथा ईश्वर को जोस्वहृदय में जानता है, वह पिता का भी पिता है, अर्थात् विद्वानों में भी विद्वान् है॥ २४॥

प्रार्थना विषय

द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्ति। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्व शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि॥ २५॥ ३६।१७॥

व्याख्यान—हे सर्वदुःख की शान्ति करने वाले! सब लोकों के ऊपर जो आकाश सो सर्वदा हम लोगों के लिये शान्त (निरुपद्रव) सुखकारक ही रहे। अन्तरिक्ष मध्यस्थ लोक और उसमें स्थित वायु आदि पदार्थ, पृथिवी, पृथिवीस्थ पदार्थ, जल, जलस्थ पदार्थ, ओषधि, तत्रस्थगुण, वनस्पति, तत्रस्थ पदार्थ, ''**विश्वे देवाः**'' जगत् के सब विद्वान् तथा विश्वद्योतक वेदमन्त्र, इन्द्रिय, सूर्यादि, उनकी किरण, तत्रस्थगुण, ब्रह्म=परमात्मा, तथा वेदशास्त्र स्थूल और सूक्ष्म, चराचर जगत्, ये सब पदार्थ हमारे लिये हे सर्वशक्तिमन् परमात्मन्! आपकी कृपा से शान्त (निरुपद्रव) सदानुकूल सुखदायक हों। मुझको भी वह शान्ति प्राप्त हो, जिससे मैं भी आपकी कृपा से शान्त, दुष्ट–क्र धादि उपद्रवरहित होऊँ तथा सब संसारस्थ जीव भी दुष्ट क्रोधादि उपद्रव रहित ही हों॥ २५॥

स्तुति विषय

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च॥ २६॥ १६।४१॥

व्याख्यान—हे कल्याणस्वरूप कल्याणकर! आप ''**शंभव**'' हो मोक्षसुखस्वरूप और मोक्षसुख के करने वाले

हो। आपको नमस्कार है। आप **"मयोभव"** हो, सांसारिक सुख के करने वाले आपको मैं नमस्कार करता हूँ। आप **"शंकर"** हो, आप से ही जीवों का कल्याण होता है अन्य से नहीं। तथा **"भयस्कर"** अर्थात् मन, इन्द्रिय, प्राण और आत्मा को सुख करने वाले आप ही हो। आप **"शिव"** मङ्गलमय हो। तथा आप **"शिवतर"** अत्यन्त कल्याण–स्वरूप और कल्याण कारक हो, इससे आप को हम लोग बारम्बार नमस्कार करते हैं, (नमो नम इति यज्ञः शतपथे) श्रद्धा भक्ति से जो जन ईश्वर को नमस्कारादि करता है, सो भी मङ्गलमय ही होता॥ २६ ॥

प्रार्थना विषय

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवा तस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥ २७ ॥
२५ । २१ ॥

व्याख्यान—हे देवेश्वर! देव विद्वानो! हम लोग कानों से सदैव भद्र (कल्याण) को ही सुनें, अकल्याण की बात भी हम कभी न सुनें। हे यजनीयेश्वर! हे यज्ञकर्त्तारः! हम आँखों से कल्याण (मगल सुख) को ही सदा देखें। हे जगदीश्वर! हे जनो! हमारे सब अंग उपाङ्ग (श्रोत्रादि इन्द्रिय तथा सेनादि उपाङ्ग) स्थिर (दृढ़) सदा रहैं, जिससे हम लोग स्थिरता से आपकी स्तुति और आप की आज्ञा का अनुष्ठन सदा करें जिससे हम लोग आत्मा, शरीर तथा इन्द्रिय और विद्वानों के हितकारक आयु को विविध सुखपूर्वक प्राप्त हों अर्थात् सदा सुख में ही रहैं॥ २७ ॥

स्तुति विषय

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन आवः। स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विः॥ २८॥ १३।३॥

व्याख्यान—हे महीय परमेश्वर! आप बड़ों से भी बड़े हो। आप से बड़ा वा (आप के) तुल्य कोई नहीं है। "**जज्ञानम्**" सब जगत् में व्यापक (प्रादूर्भूत) हो। सब जगत् के प्रथम (आदिकरण) आप ही हो। सूर्यादि लोक "**सीमतः**" सीमा से युक्त (मर्यादा सहित) "**सुरुचः**" आप से प्रकाशित हैं। "**पुरस्तात्**" इनका पूर्व रच के आप ही धारण कर रहे हो। "**वि आवः**" इन सब लोकों को विविध नियमों से पृथक् पृथक् यथायोग्य वर्त्ता रहे हो "**वेनः**" आपके आनन्द स्वरूप होने से ऐसा कोई जन संसार में नहीं है जो आपकी कामना न करै, किन्तु सब ही आपको मिला चाहते हैं, तथा आप अनन्त विद्यायुक्त हो। सब रीति से (आ समन्तात्) रक्षक आप ही हो। सो ही परमात्मा "**बुध्न्याः**" अन्तरिक्षान्तर्गत दिशादि पदार्थों को "**विवः**" विवृत (विभक्त) करता है। वे अन्तरिक्षादि "**उपमा**" सब व्यवहारों में उपयुक्त होते हैं और वे इस विविध जगत् के निवासस्थान हैं, '**सत्**' विद्यमान स्थूल जगत् '**असत्**' अविद्यमान् [=अव्यक्त] चक्षुरादि इन्द्रियों से अगोचर, इस द्विविध जगत् की "**योनि**" आदिकारण आपको ही वेदशास्त्र और विद्वान् लोग कहते हैं। इससे इस जगत् के माता पिता आप ही हैं, हम लोगों के भजनीय इष्ट हो॥ २८॥

प्रार्थना विषय

सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यञ्च वयं द्विष्मः॥ २९॥

३६। २३॥

व्याख्यान—हे सर्वमित्रसम्पादक! आप की कृपा से प्राण और जल तथा विद्या और ओषधि "**सुमित्रियाः**" सुखदायक हम लोगों के लिये सदा हों, कभी प्रतिकूल न हों। और जो हम से द्वेष अप्रीति शत्रुता करता है, तथा जिस दुष्ट से हम द्वेष करते हैं, हे न्यायकारिन्! उसके लिये "**दुमित्रियाः पूर्वोक्त प्राणादि**" प्रतिकूल दुःखकारक ही हों अर्थात् जो अधर्म करै, उसको आपके रचे जगत् के पदार्थ दुःखदायक ही हों, जिससे वह हमको दुःख न दे सकै, पुनः हम लोग सदा सुखी ही रहैं॥ २९॥

प्रार्थना विषय

यह इमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होता न्यसीदत् पिता नः। स आशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छद-वराँ२ ॥ऽआ विवेश॥ ३०॥ १७। १७॥

व्याख्यान—"**होता**" उत्पत्ति समय में देने और प्रलय समय में सबको लेने वाला परमात्मा ही है। "**ऋषिः**" सर्वज्ञ इन सब लोक लोकान्तर भुवनों का अपने स्वसामर्थ्य=कारण में होम (प्रलय करके) "**न्यसीदत्**" नित्य अवस्थित रहता है सो ही हमारा पिता है। फिर जब "**द्रविणम्**" द्रव्यरूप जगत् को स्वेच्छा से उत्पन्न किया चाहता है, उस "**आशिषा**" सामर्थ्य से यथायोग्य विविध जगत् को सहजस्वभाव से रच देता है। चराचर "**प्रथमच्छत्**" विस्तीर्ण जगत् को रच के

अनन्तस्वरूप आच्छादित किया है। और अन्तर्यामी साक्षीस्वरूप (उसमें) प्रविष्ट हो रहा है, अर्थात् बाहर और भीतर परिपूर्ण हो रहा है। वही हमारा निश्चित पिता है। उसकी सेवा छोड़ के जो मनुष्य अन्य पाषाणादि मूर्त्ति की सेवा करता है, वह कृतघ्नत्वादि महादोषयुक्त हो के सदैव दुःखभागी होता है। और जो मनुष्य परमदयामय पिता की आज्ञा में रहता है, वह सर्वानन्द का सदैव भोग करता है॥ ३०॥

स्तुति विषय

इषे पिन्वस्वोर्जे पिन्वस्व ब्रह्मणे पिन्वस्व क्षत्राय पिन्वस्व द्यावापृथिवीभ्यां पिन्वस्व। धर्मासि सुधर्मामेन्यस्मे नृम्णानि धारय ब्रह्म धारय क्षत्रं धारय विशं धारय॥ ३१॥ ३८।१४॥

व्याख्यान—हे सर्वसौख्यप्रदेश्वर! हमको "**इषे**" उत्तमान्न के लिये पुष्ट कर। अन्न के अपचन के रोगों से बचा। तथा बिना अन्न के दुःखी हम लोग कभी न हों। हे महाबल! "**ऊर्जे**" अत्यन्त पराक्रम के लिये हमको पुष्ट कर। हे वेदोत्पादक! "**ब्रह्मणे**" सत्य वेदविद्या के लिये बुद्ध्यादि बल से सदैव हमको पुष्ट और बलयुक्त कर। हे महाराजाधिराज परब्रह्मन्! "**क्षत्राय**" अखण्ड चक्रवर्ती राज्य के लिये शौर्य, धैर्य, नीति, विनय, पराक्रम और बलादि उत्तम गुणयुक्त कृपा से हम लोगों को यथावत् पुष्ट कर। अन्य देशवासी राजा हमारे देश में कभी न हों, तथा हम लोग पराधीन कभी न हों। हे स्वर्गपृथिवीश! "**द्यावापृथिवीभ्याम्**" स्वर्ग (परमोत्कृष्ट मोक्षसुख) पृथिवी (संसारसुख) इन दोनों के लिये हमको

समर्थ कर। हे सुष्ठुधर्मशील! तुम धर्मकारी हो, तथा धर्मस्वरूप ही हो, हम लोगों को भी कृपा से धर्मात्मा कर। "**अमेनि**" तुम निर्वैर हो, हमको भी निर्वैर कर। तथा कृपादृष्टि से "**अस्मे**" (अस्मभ्यम्) हमारे लिये "**नृम्णानि**" विद्या, पुरुषार्थ, हस्ती, अश्व, सुवर्ण, हीरादि रत्न, उत्कृष्ट राज्य, उत्तम पुरुष और प्रीत्यादि पदार्थों को धारण कर, जिससे हम लोग किसी पदार्थ के विना दु:खी न हों। हे सर्वाधिपते! [ब्रह्म=] ब्राह्मण=पूर्णविद्यादि सद्गुणयुक्त, क्षत्र=बुद्धि विद्या तथा शौर्यादिगुणयुक्त, विश=अनेक विद्योद्यम, बुद्धि, विद्या, धन और धान्यादि वस्तुयुक्त तथा सूद्रादि भी सेवादिगुणयुक्त, ये सब स्वदेशभक्त उत्तम हमारे राज्य में हों। इन सबका धारण आप ही करो, जिससे अखण्ड ऐश्वर्य हमारा आपकी कृपा से सदा बना रहे॥ ३१ ॥

स्तुति विषय

किस्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत्स्वित्कथासीत्।
यतो भूमिं जनयन्विश्वकर्मा वि द्यामौर्णोन्महिना
विश्वचक्षा:॥ ३२ ॥ १७।१८॥

व्याख्यान—(प्रश्नोत्तरविद्या) इस संसार का अधिष्ठान क्या है? कारण तथा उत्पादक कौन है? किस प्रकार से है? तथा रचना करने वाले ईश्वर का अधिष्ठानादि क्या है? तथा निमित्तकारण और साधन जगत् वा ईश्वर के क्या हैं? (उत्तर) "**यत:**" जिसका विश्व (जगत् कर्म) किया हुआ है, उस विश्वकर्मा परमात्मा ने अनन्त स्वसामर्थ्य से इस जगत् को

रचा है। वही इस सब जगत् का अधिष्ठान, निमित्त और साधनादि है। उसने अपने अनन्त स्वसामर्थ्य से इस सब जीवादि जगत् को यथायोग्य रचा और भूमि से ले के स्वर्गपर्यन्त रच के स्वमहिमा से ''**और्णोत्**'' आच्छादित कर रक्खा है। और परमात्मा का अधिष्ठानादि परमात्मा ही है अन्य कोई नहीं। सबका भी उत्पादन, रक्षण, धारणादि वही करता है, तथा आनन्दमय है। वह ईश्वर कैसा है कि ''**विश्वचक्षाः**'' सब संसार का द्रष्टा है। उसको छोड़ के अन्य का आश्रय जो करता है, वह दुःख-सागर में क्यों न डूबेगा?॥ ३२॥

प्रार्थना विषय

तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाह्यायुर्दा अग्नेऽस्यायुर्मे देहि वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो में देहि। अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्म आपृण॥ ३३॥ ३।१७॥

व्याख्यान—हे सर्वरक्षकेश्वराग्ने! तू हमारे शरीर का रक्षक है। सो शरीर को कृपा से पालन कर। हे महावैद्य! आप आयु (उमर) बढ़ाने वाले तथा रक्षक हो, मुझ को सुखरूप उत्तमायु दीजिए। हे अनन्त विद्यातेजः! आप ''**वर्चः**'' विद्यादि तेज (प्रकाश) अर्थात् यथार्थविज्ञान देनेवाले हो, मुझको सर्वोत्कृष्ट विद्यादि तेज देओ। पूर्वोक्त शरीरादि की रक्षा से हमको सदा आनन्द में रक्खो, और जो जो कुछ भी शरीरादि में ''**ऊनम्**'' न्यून हो, उस उस को कृपादृष्टि से सुख और ऐश्वर्य के साथ सब प्रकार से आप पूर्ण करो। किसी आनन्द वा श्रेष्ठ पदार्थ की न्यूनता हमको न रहै। आप

के पुत्र हम लोग जब पूणर्आनन्द में रहेंगे, तभी आप पिता की शोभा है। क्योंकि लड़के लोग छोटी वा बड़ी चीज अथवा, सुख, पिता माता को छोड़ किससे मांगें? सो आप सर्वशक्तिमान् हमारे पिता सब ऐश्वर्य तथा सुख देने वालों में पूर्ण हो॥ ३३॥

स्तुति विषय

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्। सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः॥ ३४॥ १७।१९॥

व्याख्यान—विश्व (सब जगत् में) जिसका चक्षु (दृष्टि) है, जिससे अदृष्ट कोई वस्तु नहीं है, तथा जिसके सर्वत्र मुख, बाहु, पग अन्य श्रोत्रादि हैं अर्थात् सर्वदृक्, सर्ववक्ता सर्वधारक और सर्वगत ईश्वर व्यापक है। उसी से जो डरेगा वही धर्मात्मा होगा, अन्यथा कभी नहीं। वही विश्वकर्मा परमात्मा एक ही अद्वितीय है। पृथिवी से ले के स्वर्ग पर्यन्त जगत् का कर्त्ता है। जिस जिस ने जैसा पाप वा पुण्य किया है उस उस को न्यायकारी दयालु जगत्पिता पक्षपात छोड़ के अनन्तबल और पराक्रम इन दोनों बाहुओं से सम्यक् ''**पतत्रैः**'' प्राप्त होने वाले सुख दुःख फल दान से सब जीवों ''**धमति**'' (धमन=कम्पन) यथायोग्य जन्ममरणादि को प्राप्त करा रहा है। उसी निराकार, अज, अनन्त, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी दयामय ईश्वर से अन्य को कभी न माना चाहिये। वही याचनीय, पूजनीय हमारा प्रभु और स्वामी, इष्टदेव है।

उसी से सुख हमको होगा, अन्य से कभी नहीं॥ ३४॥

स्तुति विषय

भूर्भुवःस्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्या सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः। नर्य प्रजां मे पाहि शस्य पशून्मे पाह्यथर्य पितुम्मे पाहि॥ ३५॥ ३।३७॥

व्याख्यान—हे सर्वमङ्गलकारकेश्वर! आप "**भूः**" सदा वर्त्तमान हो। "**भुवः**" वायु आदि पदार्थों के रचने वाले "**स्वः**" सुखरूप लोक के रचने वाले हो, हमको तीन लोक का सुख दीजिये। हे सर्वाध्यक्ष! आप कृपा करो जिससे कि मैं पुत्र पौत्रादि उत्तम गुण वाली प्रजा से श्रेष्ठ प्रजा वाला होऊं, सर्वोत्कृष्ट वीर योद्धाओं से "**सुवीरः**" युद्ध में सदा विजयी होऊं। हे महापुष्टिप्रद! आपके अनुग्रह से अत्यन्त विद्यादि तथा सोम ओषधि सुवर्णादि और नैरोग्यादि से सर्वपुष्टियुक्त होऊँ। हे "**नर्य**" नरों के हितकारक मेरी प्रजा की रक्षा आप करो। हे "**शंस्य**" स्तुति करने योग्य ईश्वर! हस्त्यश्वादि पशुओं का आप पालन करो। हे "**अथर्य**" व्यापक ईश्वर! "**पितुम्**" मेरे अन्न की रक्षा करो। दयानिधे! हम लोगों को सब उत्तम पदार्थों से परिपूर्ण और सब दिन आप आनन्द में रक्खो॥ ३५॥

स्तुति विषय

कि स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः। मनीषिणो मनसा पृचछतेदु तद्यदध्यतिष्ठद् भुवनानि धारयन्॥ ३६॥ १७।२०॥

व्याख्यान—(प्रश्न) विद्या क्या है? वन और वृक्ष किसको कहते हैं? (उत्तर) जिस सामर्थ से विश्वकर्मा ईश्वर ने जैसे तक्षा (बढ़ई) अनेकविधि रचना से अनेक पदार्थ रचता है, वैसे ही स्वर्ग सुखविशेष और भूमि=मध्य सुखवाला लोक तथा नरक=दु:ख विशेष और [इन] सब लोकों को रचा है, उसी को वन और वृक्ष कहते हैं। हे ''**मनीषिण:**'' विद्वानो! जो सब भुवनों को धारण कर के सब जगत् में और सबके ऊपर विराजमान हो रहा है, उसके विषय में प्रश्न तथा उसका निश्चय तुम लोग करो। ''**मनसा**'' उसी के विज्ञान से जीवों का कल्याण होता है, अन्यथा नहीं॥ ३६॥

प्रार्थना विषय

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरद: शतं जीवेम शरद: शत शृणुयाम शरद: शतं प्र ब्रवाम शरद: शतमदीना: स्याम शरद: शतं भूयश्च शरद: शतात्॥ ३७॥ ३६। २४॥

व्याख्यान—वह ब्रह्म ''**चक्षु:**'' सर्वदृक् चेतन है तथा देव अर्थात् विद्वानों के लिए वा मन आदि इन्द्रियाँ के लिए हितकारक मोक्षादि सुख का दाता है। ''**पुरस्तात्**'' सबका आदि प्रथम कारण वही है। ''**शुक्रम्**'' सबका करनेवाला, किंवा शुद्धस्वरूप है। ''**उच्चरत्**'' प्रलय के ऊर्ध्व वही रहता है। उसी की कृपा से हम लोग १०० वर्ष तक देखैं, जीवैं, सुनैं, कहैं, किसी के पराधीन न हों। अर्थात् ब्रह्मज्ञान, बुद्धि और पराक्रम सहित इन्द्रिय तथा शरीर सब स्वस्थ रहैं। ऐसी कृपा आप करैं कि कोई अङ्ग मेरा निर्बल (क्षीण) तथा

रोगयुक्त न हो तथा सौ वर्ष से अधिक भी आप कृपा करैं कि सौ वर्ष से उपरान्त भी हम देखैं, जीवें, सुनैं, कहैं और स्वाधीन ही रहैं॥ ३७॥

प्रार्थना विषय

या ते धामानि परमाणि यावमा या मध्यमा विश्वकर्मन्नुतेमा। शिक्षा सखिभ्यो हविषि स्वधावः स्वयं यजस्व तन्वं वृधानः॥ ३८॥ १७। २१॥

व्याख्यान—हे सर्व विधायक विश्वकर्मन्नीश्वर! जो तुम्हारे स्वरचित उत्तम, मध्यम, निकृष्ट त्रिविध धाम (लोक) हैं उन सब लोकों की शिक्षा हम आपके सखाओं को करो। यथार्थ विद्या होने से सब लोकों में सदा सुखी ही रहैं। तथा इन लोकों के "**हविषि**" दान और ग्रहण व्यवहार में हम लोग चतुर हों। हे "**स्वधावः**" स्वसामर्थ्यादि धारण करने वाले! हमारे शरीरादि पदार्थों को आप ही बढ़ाने वाले हैं। "**यजस्व**" हमारे लिए विद्वानों का सत्कार, सब सज्जनों के सुखादि की संगति, विद्यादि गुणों का दान आप स्वयं करो। आप अपनी उदारता से ही हम को सब सुख दीजिए। किञ्च हम लोग तो आप के प्रसन्न करने में कुछ भी समर्थ नहीं हैं। सर्वथा आप के अनुकूल वर्तमान नहीं कर सकते, परन्तु आप तो अधमोद्धारक हैं, इससे हमको स्वकृपा कटाक्ष से सुखी करैं॥ ३८॥

स्तुति विषय

यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वाति तृण्णं बृहस्पतिर्मे दद् दधातु। शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः॥ ३९॥ ३६।२॥

व्याख्यान—हे सर्वसन्धायकेश्वर! मेरे चक्षु (नेत्र), हृदय (प्राणात्मा), मन, बुद्धि, विज्ञान, विद्या और सब इन्द्रिय इनके छिद्र (निर्बलता), राग द्वेष चाञ्चल्य यद्वा मन्दत्वादि विकार इनका निवारण (निर्दोष) करके सत्यधर्मादि में धारण आप ही करो, क्योंकि आप बृहस्पति (सब से बड़े) हो। सो अपनी बड़ाई की ओर देख के इस बड़े काम को आप अवश्य करैं। जिस से हम लोग आप और आपकी आज्ञा के सेवन में यथार्थ तत्पर हों। मेरे सब छिद्रों को आप ही ढांकें। आप सब भुवनों के पति हैं, इसलिए आप से बारम्बार प्रार्थना हम लोग करते हैं, कि सब दिन हम लोगों पर कृपादृष्टि से कल्याणकारक हों. हे परमात्मन्! आपके सिवाय हमारा कल्याण-कारक कोई नहीं है, हमको आप ही का सब प्रकार का भरोसा है सो आप ही पूरा करेंगे॥ ३९॥

प्रार्थना विषय

विश्वकर्मा विमना आद्विहाया धाता विधाता परमोत सन्दृक्। तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्तऋषीन् पर एकमाहुः॥ ४०॥ १७।२६॥

व्याख्यान—हे सर्वज्ञ सर्वरचक ईश्वर! आप "**विश्वकर्मा**" विविध जगदुत्पातक हो, तथा "**विमना**" विविध (अनन्त)

विज्ञान वाले हो, तथा "**आद्विहाया**" सर्वव्यापक और आकाशवत् निविकार अक्षोभ्य सर्वाधिकरण हैं। वही सब जगत् का "**धाता**" धारण कर्त्ता है "**विधाता**" विविध विचित्र जगत् का उत्पादक है। तथा "**परम उत**" सर्वोत्कृष्ट है। "**सन्दृक्**" यथावत् सबके पाप और पुण्यों को देखनेवाला है। जो मनुष्य उसी की भक्ति, उसी में विश्वास और उसी का सत्कार (पूजा) करते हैं, उसको छोड़ के अन्य किसी को लेशमात्र भी नहीं मानते, उन पुरुषों को ही सब इष्ट सुख मिलते हैं औरों को नहीं। वह ईश्वर अपने भक्तों को सुख में ही रखता है और वे भक्त भी सम्यक् स्वेच्छा पूर्वक "**मदन्ति**" परमानन्द में ही सदा रहते हैं, कभी दुःख को नहीं प्राप्त होते वह परमात्मा एक अद्वितीय है। जिस परमात्मा के सामर्थ्य में "**सप्त ऋषीन्**" अर्थात् पञ्च प्राण, अन्तःकरण और जीव ये सब प्रलय विषयक कारणभूत ही रहते हैं, वही जगत् की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय में निर्विकार आनन्दस्वरूप ही रहता है। उसी की उपासन करने से हम लोगों को सदा सुख रहात है॥ ४० ॥

स्तुति विषय

चतुःस्त्रक्तिर्नाभ्रिॠतस्य सप्रथाः स नो विश्वायुः सप्रथाः स नः सर्वायुः सप्रथाः। अप द्वेषो अप ह्वरोऽन्यव्रतस्य सश्चिम॥ ४१ ॥ ३८। २०॥

व्याख्यान—हे महावैद्य! सर्वरोगनाशकेश्वर! चार कोणे वाली नाभि (मर्मस्थान) ऋत की भरी नैरोग्य और विज्ञान का घर "**सप्रथाः**" विस्तीर्ण सुखयुक्त आपकी कृपा से हों।

तथा आपकी कृपा से "**विश्वायुः**" पूर्ण आयु हो। आप जैसे सर्वसामर्थ्य से विस्तीर्ण हो, वैसे ही विस्तृत सुखयुक्त विस्तार सहित सर्वायु हमको दीजिये। हे शानत्स्वरूप! हम "**अपद्वेषः**" द्वेषरहित आपकी कृपा से तथा "**अपह्वरः**" चलन (कम्पन) रहित हों। आपकी आज्ञा और आप से भिन्न को लेशमात्र भी ईश्वर न मानैं, यही हमारा व्रत है, इससे अन्य व्रत को कभी न मानें, किन्तु आप को "**सश्चिम**" सदा सेवें। यही हमारा परम निश्चय है। इस परम निश्चय की रक्षा आप ही कृपा से करैं॥ ४१ ॥

प्रार्थना विषय

यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा। यो देवानां नामधा एक एव तसम्प्रश्नं भुवना यन्त्यन्या॥ ४२ ॥ १७। २७॥

व्याख्यान—हे मनुष्यो! जो अपना "**पिता**" (नित्य पालन करनेवाला) "**जनिता**" (जनक) उत्पादक "**विधाता**" सब मोक्ष सुखादि कामों का विधायक (सिद्धिकर्त्ता) "**विश्वा**" सब भुवन लोक-लोकान्तर "**धामानि**" अर्थात् स्थिथि के स्थानों को यथावत् जानने वाला, सब जात मात्र भूतों में विद्यमान है। जो "**देवानां नामधा**" दिव्य सूर्यादि लोक तथा इन्द्रियादि और विद्वानों का नाम व्यवस्थादि करने वाला "**एक एव**" अद्वितीय वही है अन्य कोई नहीं। वही स्वामी और पितादि अपने लोगों का है, इसमें शंका नहीं रखनी। तथा उसी परमात्मा के सम्यक् प्रश्नोत्तर करने में विद्वान् वेदादि शास्त्र और प्राणीमात्र प्राप्त हो रहे हैं। क्योंकि सब

पुरुषार्थ यही है कि परमात्मा, उसकी आज्ञा और उसके रचे जगत् का यथार्थ से निश्चय (ज्ञान) करना। उससे ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार प्रकार के पुरुषार्थ के फलों की सिद्धि होती है अन्यथा नहीं। इस हेतु से तन, मन, धन और आत्मा इनसे प्रयत्नपूर्वक ईश्वर के सहाय से सब मनुष्यों को धर्मादि पदार्थों की यथावत् सिद्धि अवश्य करनी चाहिए॥ ४२॥

स्तुति विषय

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति। दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥ ४३॥ ३४।१॥

व्याख्यान—हे धर्म्यनिरुपद्रव परमात्मन्! मेरा मन सदा "**शिवसंकल्पम्**" धर्म कल्याण संकल्पकारी ही आपकी कृपा से हो, कभी अधर्मकारी न हो। वह मन कैसा है? कि जागते हुए पुरुष का दूर दूर आता जाता है, दूर जाने का जिसका स्वभाव ही है। अग्नि, सूर्यादि, श्रोत्रादि इन्द्रिय, इन ज्योति प्रकाशकों का भी ज्योति प्रकाशक है, अर्थात् मन के विना किसी पदार्थ का प्रकाश कभी नहीं होता। वह एक बड़ा चञ्चल वेग वाला मन आपकी कृपा से ही स्थिर, शुद्ध, धर्म्मात्मा, विद्यायुक्त हो सकता है। "**दैवम्**" देव (आत्मा) का मुख्यसाधक, भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान काल का ज्ञाता है, वह आपके वश में ही है। उसको आप हमारे वश में यथावत् करें जिससे हम कुकर्म में कभी न फँसें। सदैव विद्या, धर्म्म और आपकी सेवा में ही रहैं॥ ४३॥

प्रार्थना विषय

न तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव। नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति॥ ४४॥ १७। ३१॥

व्याख्यान—हे जीवो! जो परमात्मा इन सब भुवनों का बनाने वाला विश्वकर्मा है, उसको तुम लोग नहीं जानते हो। इसी हेतु से तुम ''**नीहारेण**'' अत्यन्त अविद्या से आवृत, मिथ्यावाद, नास्तिकत्व, बकवाद करते हो, इस से दुःख ही तुम को मिलेगा, सुख नहीं। तुम लोग ''**असुतृपः**'' केवल स्वार्थसाधक प्राण-पोषणमात्र में ही प्रवृत्त हो रहे हो। ''**उक्थशासश्चरन्ति**'' केवल विषय-भोगों के लिए ही अवैदिक कर्म करने में प्रवृत्त हो रहे हो, और जिसने ये सब भुवन रचे हैं, उस सर्वशक्तिमान् न्यायकारी परब्रह्म से उलटे चलते हो। अत एव उसको तुम नहीं जानते। (प्रश्न) वह ब्रह्म और हम जीवात्मा लोग, ये दोनों एक हैं वा नहीं? (उत्तर) ''**यद्युष्माकमन्तरं बभूव**'' ब्रह्म और जीव की एकता वेद और युक्ति से सिद्ध कभी नहीं हो सकती, क्योंकि जीव ब्रह्म का पूर्व से ही भेद है। जीव अविद्या आदि दोषयुक्त है, ब्रह्म अविद्यादि दोषयुक्त कभी नहीं होता, इससे यह निश्चित है कि जीव और ब्रह्म एक न थे, न होंगे और न ही हैं किञ्च व्याप्य व्यापक, आधाराधेय, (सेव्य सेवकादि) जन्यजनकादि सम्बन्ध तो जीवादि के साथ ब्रह्म का है। इससे जीव ब्रह्म की एकता मानना किसी मनुष्य को योग्य नहीं॥ ४४॥

प्रार्थना विषय

भग एव भगवाँ२ऽअस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम। तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुर एता भवेह॥ ४५॥ ३४। ३८॥

व्याख्यान—हे सर्वाधिपते! महाराजेश्वर! आप "**भगः**" परमैश्वर्यस्वरूप होने से भगवान् हो। हे "**देवाः**" विद्वानो! "**तेन**" (भगवतेश्वरेण प्रसन्नेन तत्सहायेनैव) उस भगवान् प्रसन्न ईश्वर के सहाय से हम लोग परमैश्वर्ययुक्त हों। हे "**भग**" परमेश्वर! सर्व संसार "**तं त्वा**" उन आपको ही ग्रहण करने को अत्यन्त इच्छा करता है, क्योंकि कौन ऐसा भाग्यहीन मनुष्य है, जो आप को प्राप्त होने की इच्छा न करे? सो आप हमको प्रथम से प्राप्त हों, फिर कभी हम से आप और ऐश्वर्य अलग न हों। आप अपनी कृपा से इसी जन्म में परमैश्वर्य का यथावत् भोग हम लोगों को करावें, और आपकी सेवा में हम नित्य तत्पर रहैं॥ ४५॥

प्रार्थना विषय

गणानां त्वा गणपति हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपति हवामहे निधीनां त्वा निधिपति हवामहे वसो मम। आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्॥ ४६॥ २३। १९॥

व्याख्यान—हे समूहाधिपते! आप मेरे "**गण**" अब समूहों के पति होने से आप को गणपति नाम से ग्रहण करता

हूँ। तथा मेरे प्रिय कर्मकारी पदार्थ और जनों के **''पति''** पालक भी आप हैं। इससे आप को प्रियपति मैं अवश्य जानूँ। एवं मेरी सब निधियों के पति होने से आप को मैं निश्चित निधिपति जानूँ। हे **''वसो''** सब जगत् जिस सामर्थ्य से उत्पन्न हुआ, उस **''गर्भ''** स्वसामर्थ्य का धारण और पोषण करने वाला आपको ही मैं जानूँ। सो गर्भ सब का कारण आपका सामर्थ्य है। यही सब जगत् का धारण और पोषण करता है। यह जीवादि जगत् तो जन्मता और मरता है परन्तु आप सदैव अजन्मा और अमृतस्वरूप हैं। आपकी कृपा से अधर्म, अविद्या, दुष्टभावादि को **''अजानि''** दूर फेकूँ। तथा हम सब लोग आपकी ही **''हवामहे''** अत्यन्त स्पर्धा (प्राप्ति की इच्छा) करते हैं। सो आप अब शीघ्र हमको प्राप्त होओ। जो प्राप्त होने में आप थोड़ा भी बिलम्ब करेंगे तो हमारा कुछ भी कभी ठिकाना न लगेगा॥ ४६ ॥

प्रार्थना विषय

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्।
इदमहमनृनात् सत्यमुपैमि॥ ४७॥ १।५॥

व्याख्यान—हे सच्चिदानन्द स्वप्रकाशरूप ईश्वराग्ने! ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास आदि सत्यव्रतों का आचरण मैं करूँगा। सो इस व्रत को आप कृपा के सम्यक् सिद्ध करें तथा मैं अनृत अनित्य देहादि पदार्थों से (पृथक् हो के) इस यथार्थ सत्य जिस का कभी व्यभिचार विनाश नहीं होता, उस सत्याचरण विद्यादि लक्षण धर्म को प्राप्त होता हूँ। इस मेरी इच्छा को आप पूरी करें, जिससे मैं सभ्य विद्वान्

सत्याचरणी आपकी भक्तियुक्त धर्मात्मा होऊँ॥ ४७॥

स्तुति विषय

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः। यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ ४८॥ २५। १३॥

व्याख्यान—हे मनुष्यो! जो परमात्मा अपने लोगों को ''**आत्मदाः**'' आत्मा का देने वाला तथा आत्मज्ञानादि का दाता है, जीवप्राणदाता तथा ''**बलदाः**'' त्रिविध बल–एक मानसविज्ञानबल; द्वितीय इन्द्रियबल अर्थात् श्रोत्रादि की स्वस्थता, तेजोवृद्धि; तृतीय–शरीरबल, नाम नैरोग्य, महापुष्टि दृढ़ाङ्गता और वीर्यादि वृद्धि इन तीन बलों का जो दाता है, जिस के ''**प्रशिषम्**'' अनुशासन (शिक्षा मर्यादा) को यथावत् देव=विद्वान् लोग मानते हैं, सब प्राणी अप्राणी जड़ चेतन विद्वान् वा मूर्ख उस परमात्मा के नियमों को कोई कभी उल्लंघन नहीं कर सकता। जैसे कि कान से सुनना, आँख से देखना इसका उलटा कोई नहीं कर सकता है, जिसकी ''**छाया**'' आश्रय ही अमृत विज्ञानी लोगों का मोक्ष कहाता है। तथा जिसकी ''**अच्छाया**'' अकृपा दुष्ट जनों के लिए बारम्बार मरण और जन्मरूप महाक्लेशदायक है। हे सज्जन मित्रो! वही एक परमसुखदायक पिता है। आओ अपने सब जने मिल के प्रेम, विश्वास और भक्ति करें। कभी उसको छोड़ के अन्य को उपास्य न मानें। वह अपने को अत्यन्त सुख देगा इसमें कुछ सन्देह नहीं॥ ४८॥

स्तुति विषय

उपहूता इह गाव उपहूता अजावयः। अथो अन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु नः। क्षेमाय वः शान्त्यै प्र पद्ये शिव शग्म शंयोः शंयोः॥ ४९॥ ३। ४३॥

व्याख्यान—हे पश्वादिपते उत्तम महात्मन्! आपकी ही कृपा से उत्तम उत्तम गाय, भैंस, घोड़े, हाथी, बकरी, भेड़ तथा उपलक्षण से अन्य सुखदायक सब पशु और अन्न सर्वरोगनाशक ओषधियों का उत्कृष्ट रस "**नः**" हमारे घरों में नित्य स्थिर (प्राप्त) रख, जिससे किसी पदार्थ के बिना हमको दुःख न हो। हे विद्वानो! "**वः**" (युष्माकम्) तुम्हारे संग और ईश्वर की कृपा से क्षेम कुशलता और शान्ति तथा सर्वोपद्रव विनाश के लिए "**शिवम्**" मोक्ष सुख और "**शग्मम्**" इस संसार सुख को मैं प्राप्त होऊँ। मोक्षसुख और प्रजा–सुख इन दोनों की कामना करने वाला जो मैं हूँ, उन मेरी उक्त दोनों कामनाओं को आप यथावत् शीघ्र पूरी कीजिये। आप का यही स्वभाव है कि अपने भक्तों की कामना अवश्य पूरी करना॥ ४९॥

प्रार्थना विषय

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम्। पूषा नो यथा वेदसामसद् वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये॥ ५०॥ २५। १८॥

व्याख्यान—हे सुख और मोक्ष की इच्छा करने वाले जनो! उस परमात्मा के ही "**हूमहे**" हम लोग प्राप्त होने के लिए अत्यन्त स्पर्धा करते हैं कि उसको हम कब मिलेंगे।

क्योंकि वह "**ईशानम्**" सब जगत् का स्वामी है। और ईषण (उत्पादन) करने की इच्छा करने वाला है। दो प्रकार का जगत् है, चर और अचर। इन दोनों प्रकार के जगत् का पालन करने वाला वही है। "**धियञ्जिन्वम्**" विज्ञानमय, विज्ञानप्रद और तृप्तिकारक ईश्वर से अन्य कोई नहीं है। उसको "**अवसे**" अपनी रक्षा के लिए हम स्पर्धा (इच्छा) से आह्वान करते हैं, जैसे वह ईश्वर "**पूषा**" हमारे लिए पोषणप्रद है, वैसे ही "**वेदसाम्**" धन और विज्ञानों की वृद्धि का "**रक्षिता**" रक्षक है, तथा "**स्वस्तये**" निरुपद्रवता के लिए हमारा "**पायुः**" पालक वही है और "**अदब्धः**" हिंसा रहित है। इसलिए ईश्वर जो निराकार सर्वानन्दप्रद है, हे मनुष्यो! उनको मत भूलो। बिना उसके कोई सुख का ठिकाना नहीं है॥ ५० ॥

स्तुति विषय

मयीदमिन्द्र इन्द्रियं दधात्वस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम्।
अस्माक सन्त्वाशिषः सत्या नः सन्त्वाशिषः ॥ ५१ ॥
२। १०॥

व्याख्यान—हे इन्द्र परमैश्वर्यवन् ईश्वर! "**मयि**" मुझमें विज्ञानादि शुद्ध इन्द्रिय ["**दधातु**" धारण करो और] "**रायः**" उत्तम धन को "**मघवानः**" परम धनवान् आप [हमारे लिए] "**सचन्ताम्**" सद्यः प्राप्त करो। हे सर्वकामपूर्ण करने वाले ईश्वर! आपकी कृपा से हमारी आशा सत्य ही होनी चाहिये।

(पुनरुक्त अत्यन्त प्रेम और त्वराद्योतनार्थ है)। हे

भगवन्! हम लोगों की इच्छा आप शीघ्र ही सत्य कीजिए, इससे हमारी न्याययुक्त इच्छा के सिद्ध होने से हम लोग परमानन्द में सदा रहैं॥५१॥

प्रार्थना विषय

सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्।
सनिं मेधामयासिषं स्वाहा॥५२॥ ३२।१३॥

व्याख्यान—हे सभापते विद्यामय न्यायकारिन्! हमको सभासद्, सभाप्रिय सभा ही हमारा राजा न्यायकारी हो। ऐसी इच्छा वाले आप हमको कीजिये। किसी एक मनुष्य को हम लोग राजा कभी न बनावें, किन्तु आप को ही हम लोग सभापति सभाध्यक्ष राजा मानैं। आप अद्भुत, आश्चर्य, विचित्र शक्तिमय हैं, तथा प्रियस्वरूप ही हैं। इन्द्र जो जीव उसके कमनीय (कामना के योग्य) आप ही हैं। ''**सनिम्**'' सम्यक् भजनीय और सेव्य भी सब जीवों के आप ही हैं। ''**मेधाम्**'' विद्या सत्यधर्मादि धारण वाली बुद्धि को हे भगवन्! मैं याचता हूँ। सो आप कृपा करके मुझको देओ। ''**स्वाहा**'' यही स्वकीय वाक् ''**आह**'' कहती है कि ईश्वर से भिन्न कोई जीवों को सेव्य नहीं है। ऐसी वेद में ईश्वराज्ञा है, सो सब मनुष्यों को अवश्य मानना योग्य है॥५२॥

स्तुति विषय

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा॥५३॥
३२।१४॥

व्याख्यान—हे सर्वज्ञाग्ने परमात्मन्! जिस विज्ञानवती यथार्थ धारणा वाली बुद्धि को [''**देवगणाः**''] देव समूह (विद्वानों के वृन्द) ''**उपासते**'' (धारण करते) हैं, तथा यथार्थ पदार्थविज्ञान वाले पितर जिस बुद्धि के उपाश्रित होते हैं, उस बुद्धि के साथ इसी समय कृपा से मुझको मेधावी कर। ''**स्वाहा**'' इसको आप अनुग्रह और प्रीति से स्वीकार कीजिये, जिससे मेरी जड़ता सब दूर हो जाय॥५३॥

प्रार्थना विषय

मेधां मे वरुणो ददातु मेधामग्निः प्रजापतिः।
मेधामिन्द्रश्च वायुश्च मेधां धाता ददातु मे स्वाहा॥५४॥
३२।१५॥

व्याख्यान—हे सर्वोत्कृष्टेश्वर! आप ''**वरुणः**'' वर (वरणीय) आनन्दस्वरूप हो, कृपा से मुझको ''**मेधाम्**'' सर्वविद्या सम्पन्न बुद्धि दीजिये। तथा ''**अग्निः**'' विज्ञानमय विज्ञानप्रद ''**प्रजापतिः**'' सब संसार के अधिष्ठाता पालक, ''**इन्द्रः**'' परमैश्वर्यवान् ''**वायुः**'' विज्ञानवान् अनन्तबल, ''**धाता**'' तथा सब जगत् का धारण और पोषण करने वाले आप मुझको अत्युत्तम मेधा (बुद्धि) दीजिये॥५४॥

स्तुति विषय

इदं मे ब्रह्म च क्षत्रं चोभे श्रियमश्नुताम्।
मयि देवा दधतु श्रियमुत्तमां तस्यै ते स्वाहा॥५५॥
३२।१६॥

व्याख्यान—हे महाविद्य महाराज सर्वेश्वर! मेरा ''**ब्रह्म**''

(विद्वान्) और "**क्षत्र**" राजा महाचतुर न्यायकारी शूरवीर राजादि (क्षत्रिय) ये दोनों आपकी अनन्त कृपा से यथावत् अनुकूल हों। "**श्रियम्**" सर्वोत्तम विद्यादि लक्षणयुक्त महाराज्य श्री को हम प्राप्त हों। हे "**देवाः**" विद्वानो! दिव्य ईश्वर–गुण–परमकृपा आदि, उत्तम विद्यादि लक्षण समन्वित श्री को मुझ में अचलता से धारण कराओ। उसको मैं अत्यन्त प्रीति से स्वीकार करूँ और उस श्री को विद्यादि सद्गुण वा सर्व संसार के हित के लिए तथा राज्यादि प्रबन्ध के लिए व्यय करूँ॥५५॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां श्रीयुतविराजामन्द सरस्वतीस्वामिनां महाविदुषां शिष्येण दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचित आर्याभिविनये द्वितीयः प्रकाशः सम्पूर्णः॥